ISSN: 2583-391X

सोच भारत की

इन्द्रप्रस्थ शोध संदर्श

वर्ष 6, अंक 4, वि. सं. 2082
अक्टूबर– दिसंबर, 2025, (युगाब्द – 5127)

Quarterly peer-reviewed journal

सोच भारत की

इन्द्रप्रस्थ शोध संदर्श

परामर्श

श्री अजेय कुमार, स्वतंत्र चिन्तक, दिल्ली
प्रो. योगेश सिंह, कुलपति, दिल्ली विश्वविद्यालय, दिल्ली
प्रो. एस. पी. बंसल, कुलपति, हिमाचल प्रदेश केंद्रीय विश्वविद्यालय, धर्मशाला
प्रो. ब्रजेश कुमार पाण्डेय, रेक्टर, जवाहर लाल नेहरू विश्वविद्यालय, दिल्ली
प्रो. सुषमा यादव, प्रति कुलपति, हरियाणा केंद्रीय विश्वविद्यालय, महेंद्रगढ़
प्रो. भगवती प्रकाश शर्मा, पूर्व कुलपति, गौतम बुद्ध विश्वविद्यालय, ग्रेटर नोएडा
प्रो. रंजना अग्रवाल, निदेशक, सीएसआईआर-राष्ट्रीय विज्ञान संचार एवं नीति अनुसंधान संस्थान, दिल्ली

प्रमुख प्रबंधक

श्री विनोद शर्मा 'विवेक', प्रमुख, इन्द्रप्रस्थ अध्ययन केंद्र, नयी दिल्ली

प्रधान संपादक

प्रो. राजेंद्र कुमार पाण्डेय, प्राचार्य, देशबंधु कॉलेज, दिल्ली विश्वविद्यालय, दिल्ली

संपादक

डॉ. कुमार सत्यम, सहायक आचार्य, समाज कार्य विभाग, डॉ. भीम राव अंबेडकर महाविद्यालय, दिल्ली विश्वविद्यालय, दिल्ली

संपादक समिति

प्रो. राकेश कुमार पाण्डेय, आचार्य, भौतिकी विभाग, किरोड़ी मल महाविद्यालय, दिल्ली विश्वविद्यालय, दिल्ली
प्रो. सुनील कुमार कश्यप, आचार्य, वाणिज्य विभाग, शहीद भगत सिंह महाविद्यालय, दिल्ली विश्वविद्यालय, दिल्ली
डॉ. राम निवास सिंह, प्रवक्ता, शिक्षा निदेशालय, दिल्ली सरकार, दिल्ली
डॉ. सोनिया, सहायक आचार्य, संस्कृत, मानविकी विद्यापीठ, इग्नू, दिल्ली
डॉ. विकास शर्मा, सहायक आचार्य, संस्कृत, पाली, प्राकृत और प्राच्यभाषा विभाग, इलाहाबाद विश्वविद्यालय, प्रयागराज
श्री दीपक सिंह, शोध छात्र, राजनीति विज्ञान विभाग, चौ. चरण सिंह विश्वविद्यालय, मेरठ

मीडिया आई. टी. एवं प्रचार-प्रसार

डॉ. मनीष कुमार सिंह, सहायक आचार्य, संगणक विज्ञान विभाग, श्यामा प्रसाद मुखर्जी महाविद्यालय, दिल्ली
डॉ. मनोज कुमार, सहायक आचार्य, यांत्रिकी विभाग, भास्कराचार्य महाविद्यालय, दिल्ली
डॉ. दीपक मित्तल, सहायक आचार्य, संगणक विज्ञान विभाग, दीन दयाल उपाध्याय महाविद्यालय, दिल्ली

कार्यालय

1/7, श्रीराम कुटीर, द्वितीय तल,
चाणक्य प्लेस, C-1, जनक पुरी,
नयी दिल्ली - 110059
ईमेल: ipss.ipak@gmail.com
सचल दूरभाष: 981149924, 9868084938

Editorial

It gives me great pleasure to present Issue 4 of Indraprasth Shodh Sandarsh, 2025. This issue brings together a diverse collection of scholarly writings that reflect on Bhartiya society, culture, knowledge traditions, family values, art, language, national thought, and social change. The contributions show how Bharat's rich intellectual and cultural heritage continues to remain meaningful in understanding contemporary society.

The issue begins with a thoughtful study on Swami Vivekananda and national awakening, highlighting his ideas on humanism, education, self-confidence, spirituality, freedom, and nation-building. His vision reminds us that the strength of a nation ultimately depends upon the character, confidence, and social responsibility of its people.

Another important contribution examines Bharatanatyam and the Devadasi tradition, with special attention to costume, gestures, Nayika-bheda, and the cultural and psychological expressions of the dancer. The paper beautifully connects classical art with women's emotions, identity, spirituality, and cultural expression.

The issue also gives significant space to the family as a foundation of social life. The paper on Panch Parivartan discusses family value enlightenment as an important pathway to social cohesion, responsible citizenship, social harmony, environmental responsibility, and self-reliance. Other contributions further explore family values within the Indian knowledge tradition and discuss the growing challenges faced by families in contemporary society. Together, these writings underline the continuing importance of family in developing values, responsibility, mutual respect, and social belonging.

Bhartiya cultural expression is further enriched through a study of folk elements in Bhartiya painting. It explains how traditional symbols, colours, natural forms, and folk motifs continue to influence contemporary Bhartiya art and preserve cultural memory.

The discussion on linguistic skills and national self-reliance draws attention to the role of language in education, employment, knowledge creation, cultural identity, and digital empowerment. It reminds us that linguistic diversity is not a barrier to development but an important strength of Bharat.

The issue also includes a meaningful discussion on Mahatma Gandhi and Dr. B. R. Ambedkar, focusing on their dialogue, differences, and approaches towards social justice, equality, and national unity. Their ideas continue to encourage serious reflection on the making of an inclusive society.

I sincerely thank all the authors and contributors for their valuable scholarly efforts. I hope this issue will encourage readers to engage with Indian knowledge, culture, social concerns, and contemporary challenges with renewed academic interest.

Editor

अनुक्रमाणिका

पृष्ठ

संपादकीय i

शोध-पत्र

- राष्ट्र जागृति के पुरोधा स्वामी विवेकानन्द 2-11
  हैमी दत्त और प्रो. पुष्पा
- भरतनाट्यम् में देवदासी परम्परा, वेशभूषा, मुद्रा एवं नायिका-भेद: नृत्यांगना की मनोदशा का सांस्कृतिक एवं मनोवैज्ञानिक अध्ययन 12-17
  Priya Majumder & Dr. Soniya
- **Family Value Enlightenment as the Core of Panch Parivartan: Pathway to Social Cohesion** 18-27
  Dr. Rachna Bhopal
- **Folk Elements in Indian Painting: An Analytical Study** 28-36
  Dr. Kshama Divedi
- सामाजिक समरसता की स्थापना में आगत चुनौतियाँ एवं समाधान : हमारी सांस्कृतिक विरासत के परिप्रेक्ष्य में 37-43
  डॉ. राकेश कुमार गोरा

अंतर्दृष्टि

- भारतीय ज्ञान परंपरा में पारिवारिक मूल्य: प्राचीन संदर्भ एवं वर्तमान 45-48
  प्रो. अंजू सेठ
- देश की आत्मनिर्भरता का नया सोपान : भाषायी कौशल 49-52
  शिवानी चौहान
- समसमायिक परिप्रेक्ष्य में परिवार की आवश्यकता, चुनौतियाँ एवं समाधान 53-57
  डॉ. भारती अग्रवाल

पुस्तक समीक्षा

- **Nanaji Deshmukh: An Epitome of Indian Social Work** 59-61
  Dr. Mithilesh Kumar Tiwari

विविधा

- महात्मा गांधी और डॉ. भीमराव अंबेडकर का प्रथम मिलन, कारागार-संवाद एवं सामाजिक दृष्टि : भीमायनम् के सन्दर्भ में 63-67
  Mintu Mondal

शोध-पत्र

■■■

राष्ट्र जागृति के पुरोधा स्वामी विवेकानन्द

हैमी दत्त

संस्कृत संकाय, मानविकी विद्यापीठ,

इन्दिरा गान्धी राष्ट्रीय मुक्त विश्वविद्यालय

प्रो. पुष्पा

संस्कृत संकाय, मानविकी विद्यापीठ,

इन्दिरा गान्धी राष्ट्रीय मुक्त विश्वविद्यालय

भूमिका

"यदा यदा हि धर्मस्य ग्लानिर्भवति भारत।

अभ्युत्थानमधर्मस्य तदात्मानं सृजाम्यहम् ॥

परित्राणाय साधूनां विनाशाय च दुष्कृताम्।

धर्मसंस्थापनार्थाय संभवामि युगे युगे॥"[1]

ब्रिटिश साम्राज्यवाद के भीषण शोषण, दमन एवं अत्याचार से जब भारत सम्पूर्ण रूप से जकड़ा हुआ था तथा जब भारत सामाजिक, आर्थिक एवं सांस्कृतिक दृष्टि से पतनोन्मुख अवस्था में था तभी स्वामी विवेकानन्द का अवतरण हुआ। 12 जनवरी 1863 में कलकाता के दत्त परिवार में इनका जन्म हुआ। इनका व्यवहारिक नाम था नरेन्द्र नाथ। इनकी माता का नाम -भुवनेश्वरी एवं पिता का नाम विश्वनाथ है। इन्होंने पारिवारिक परम्परा के अनुसार शास्त्र चर्चा किये थे। अंग्रेजी साहित्य, इतिहास, फारसी, संस्कृत भाषा का ज्ञान इनको था। नरेन्द्र नाथ जब सन्यासी माया बन्धनों से मुक्त होकर आध्यात्म के क्षेत्र में समर्पित हुए तभी वह स्वामी विवेकानन्द के नाम से ख्याति लाभ किए। नरेन्द्र नाथ को विवेकान्द बनाने के लिए गुरु रामकृष्ण परमहंस के भूमिका को रोम्या रीला ने इसप्रकार से व्यक्त किया है -

"जो धारा विवेकानन्द की असाधारण नियति को गढ़ रही थी, वह धरती के पेट में ही समा गयी होती यदि रामकृष्ण की अचूक दृष्टि ने मानो अमोघबाण की भाँति पथ रोचक चट्टान को फोड़कर शिष्ट की आत्मा के प्रवाह को मुक्त न कर दिया होता। "[2]

ISSN: 2583-391X

रामकृष्ण परमहंस ने मानव सेवा को वास्तविक आराधना मानते थे। इसीलिए इसी आधार पर स्वामी विवेकानन्द ने भगवान ज्ञान से प्रत्येक व्यक्ति के सेवा किया है। उनका कथन है -
"यदि जगत के दुःख दूर करने के लिए सहस्त्रों बार जन्म लेना पड़े तो भी मैं तैयार हूँ। इससे यदि किसी का तनिक भी दुःख दूर होता तो वह मैं करूँगा और ऐसा भी मन में आता है कि केवल अपनी मुक्ति से क्या होगा ? सबको साथ लेकर उस मार्ग पर जाना होगा।"[3]

वह गुरु के उपदेश को अपने जीवन के आदर्श मानकर त्याग एवं मानव सेवा के माध्यम से आत्मानुभूति के सभी पथों को अपने जीवन में उतारा एवं साथ ही साथ राष्ट्रीय जागरण में गुरुत्वपूर्ण भूमिका निभाया।

विषय

राष्ट्रीय जागरण में मानवतावाद का एक विशिष्ट स्थान रहा है। यह मानवतावाद उपनिषदों में आलोचित ब्रह्म तथा आत्मा सम्बन्धी विचार पर आधारित है, जहाँ प्रत्येक व्यक्ति दैवीय शक्ति का प्रतीकस्वरूप है, और इस राष्ट्रीय जीवन का मूलाधार है जनगण तथा समाज में रहने वाले हर व्यक्ति। इसीलिए स्वामी विवेकानन्द कहा है -
"मैं ऐसे हर व्यक्ति को द्रोही समझूँगा जो जनगण के रक्त शोषण से पुष्ट होकर उनकी उन्नति की ओर लेशमात्र भी ध्यान नहीं देता।"[4]

उनके चिन्तन में जैसे स्वदेशी और राष्ट्रीयता की भावनायें थीं वैसे ही विश्व बन्धुत्व और अन्तर्राष्ट्रीयता की प्रवृत्तियां भी थीं।अन्तराष्ट्रीय शान्ति और अपराधों से मुक्त सामाजिक व्यवस्था के स्थापना के लिए उनका लक्ष्य था -
प्रत्येक व्यक्ति का सर्वव्यापी आध्यात्मिक स्वरूप की अनुभूति एवं आन्तरिक पूर्णता के फलस्वरूप बाह्य जगत में मानवतावादी भावनाओं की अभिव्यक्ति करना। 7 जुलाई 1897 में मेरी हल को लिखित एक पत्राचार से विवेकानन्द के तीव्र मानवतावाद का प्रमाण मिलता है -
"मुझे अपनी मुक्ति की इच्छा बिल्कुल नहीं, मेरी अभिलाषा है कि मैं बार-बार जन्म लूँ और हजारों दुःख भोगता रहूँ, ताकि मैं उस एक मात्र सम्पूर्ण आत्माओं के समष्टि रूप ईश्वर की पूजा कर सकूँ जिसकी सचमुच सत्ता है और जिसका मुझे विश्वास है। सबसे बढ़कर, सभी जातियों और वर्णो के पापी, तापी और दरिद्र रूपी ईश्वर ही मेरा विशेष उपास्य हैं।"[5]
11 सितम्बर 1893 ई. में शिकागो विश्व सम्मेलन वह कहा था- "साम्प्रदायिकता, हठधर्मिता और उनकी वीभत्स वंशधर धर्मान्धता इस सुन्दर पृथ्वी पर बहुत समय तक राज्य कर चुकी है। वे पृथ्वी को हिंसा से भरती रही है, उसको बारम्बार मानवता के रक्त से नहलाती रही है, सभ्यताओं को विध्वस्त करती और पूरे- पूरे देशों को निराशा के गर्त में डालती रही है। यदि ये वीभत्स दानवी न होती, तो मानव समाज आज की अवस्था से कहीं अधिक उन्नत हो गया होता। पर अब उनका समय आ गया है, और मैं आन्तरिक रूप से आशा करता हूँ कि आज सुबह इस सभा के सम्मान में जो घंटा ध्वनि हुई है, वह समस्त धर्मान्धता का, तलवार या लेखनी के

द्वारा होने वाले सभी उत्पीड़नों का, तथा एक ही लक्ष्य की ओर अग्रसर होने वाले मानवों की पारस्परिक कटुताओं का मृत्यु विवाद सिद् हो।"[6]

उनके मतानुसार राष्ट्र का निर्माण होता है- व्यक्तियों से। इस कारण उनका अनुरोध है - सभी व्यक्तियों को अपने अन्दर का आत्मविश्वास, पुरुषार्थ, मानव गरिमा तथा सम्मान की भावनाओं को विकसित करना चाहिए जिससे संसार में हुःख कष्ट का विनाश सम्भव होगा। उनके मत में-

"यह विश्वास केवल क्षुद्र 'में' को लेकर नहीं है कारण वेदान्त एकान्तवाद की भी शिक्षा देता है। इस विश्वास का अर्थ है सबके प्रति विश्वास, कारण, तुम सभी शुद्धस्वरूप हो, आत्मप्रीति का अर्थ है सब प्राणियों में प्रीति, समस्त पशुपक्षियों में प्रीति, सब वस्तुओं में प्रीति क्योंकि तुम उनसे भिन्न तो नहीं हो। इस महान् विश्वास के बल पर ही समस्त जगत् की उन्नति होगी। यही मेरी ध्रुव धारणा है।"[7]

इसप्रकार से व्यक्ति तथा राष्ट्र का हित सम्भव होगा।

"संसार के दूसरे राष्ट्रों से पृथक रहना हमारी अवनति का कारण हुआ है। अतः पुनः सभी राष्ट्रों से मिलकर संसार के प्रवाह में आ जाना ही राष्ट्र की उन्नति का एक मात्र उपाय है।"[8]

स्वामी विवेकानन्द विश्वास करते थे विदेशों में भारतीय आध्यात्मिकता का प्रचार करने से ही देश को सबल तथा प्रगतिशील बनाना सम्भव होगा। इसीलिए वह 11 सितम्बर 1893 में शिकागो विश्व - धर्म सम्मेलन में अंश ग्रहण करके पाश्चात्य राष्ट्रों को भारत की सहिष्णुतावाद और सार्वभौमवाद पर आधारित हिन्दू धार्मिक दर्शन तथा संस्कृति के वारे में अवगत कराये जिससे भारत के प्रति पश्चिमी लोगों के दृष्टिकोण परिवर्तित हुआ। अध्यक्ष मेरी स्नेल ने लिखा है-

"पार्लियामेंट पर एवं सामान्य तौर पर अमरीकी जनता पर जितना गहरा प्रभाव हिन्दू धर्म का पड़ा उतना अन्य किसी भी धर्म नहीं।"[9]

उनके मत में प्रत्येक व्यक्ति तथा समाज के लिए धर्म अत्यन्त आवश्यक है। राष्ट्र की प्रगति धार्मिक तथा आध्यात्मिक क्षेत्र में होता है। उनके अनुसार धर्म वही है जो हमें उत्तम पुरुष का ज्ञान कराए,जो मनुष्य को सद्विचार एवं आत्मा से जोड़ता है, जो मनुष्य के अन्दर की पशुता की इन्सानियत और इन्सानियत की देवत्व में बदलने की सामर्थ्य रखता। उनका कथन है-

"मैं उस धर्म पर विश्वास नहीं करता, जो न विधवाओं के आँसू पोछ सके और न अनाथों के मुँह में रोटी का टुकड़ा ही पहुँचा सके, भले ही उसके सिद्धान्त कितने ही उदात्त एवं संगठित क्यों न हों।"[10]

वह सर्वदा "अनेकता में एकता" के दृष्टि के आधार पर एक धर्म से अन्य धर्म परिवर्तन के स्थान पर एक दूसरे के अच्छे गुणों को ग्रहण करने में महत्व दिया है। उनका कथन है-

"प्रत्येक राष्ट्र का एक विशेष निर्धारित मार्ग होता है, और भारतवर्ष का विशेष तत्व है धर्म। संसार के अन्य देशों में धर्म केवल कई बातों में से एक है, असल में वहाँ तो वह एक छोटी सी चीज गिना जाता है। धर्म तो उस राष्ट्र की अन्य बहुत सी चीजों में से केवल एक ऊपरी सजावट की सी चीज रह जाती है। पर भारतवर्ष में धर्म ही राष्ट्र के हृदय का मर्म स्थल है इसी को राष्ट्र की रीढ़ कह लो अथवा वह नींव समझो जिसके ऊपर राष्ट्र रूपी ईमारत खड़ी है, इस देश (भारत) में धर्म को सर्वोपरि समझा जाता है।"[11]

वह सभी धर्मों में एक ही तत्त्व की समानता को अनुभव करते हुए कहते-

"प्रत्येक सम्प्रदाय जिस भाव से ईश्वर की आराधना करता है। मैं उनमें से प्रत्येक के साथ ठीक उसी भाव से आराधना करूँगा। मैं मुसलमानों के साथ उसी भाव में मस्जिद में जाऊँगा, ईसाईयों के साथ गिरजे में जाकर ईसा के सामने घुटने टेकूँगा, बौद्धों के मन्दिर में प्रवेश कर बुद्ध और संघ की शरण लूँगा और अरण्य में जाकर हिन्दुओं के साथ ध्यान में निमग्न हो उनकी ही भाँति सबके हृदय में उद्भासित करने वाली ज्योति के दर्शन करने में सचेष्ट हो जाऊँगा।"[12]

वह शिकागो में धर्म महासभा में धार्मिक एकता के सम्बन्ध में कहा है-

"जैसे विभिन्न नदियाँ भिन्न-भिन्न स्रोतों से निकल कर समुद्र में मिल जाती हैं उसी प्रकार, हे प्रभो, भिन्न-भिन्न रुचि के अनुसार विभिन्न टेढ़े-मेढ़े व सीधे रास्ते से जाने वाले लोग अन्त में तुझमें ही आकर मिल जाते हैं।"[13]

स्वामी विवेकानन्द के मतानुसार राष्ट्र की महानता संगठन, शक्ति के एकीकरण एवं भावनाओं की समानता से ही सम्भव है। इसलिये हमें विभिन्नताएँ एवं मतभेदों को परित्याग करके देशवासियों के सेवा करना चाहिए। वृहदारण्यक उपनिषद में है- 'यत्त तु द्वैतमिव भवति'- अर्थात् जब हमारे अन्दर भेदभाव रहेता है तब तक हम एक दूसरे के साथ भेदयुक्त व्यवहार करते है, किन्तु जैसे ही हम एकत्व की प्राप्त करते वैसे ही सम्पूर्ण भेद समाप्त हो जाता। हम तब अभेद आचरण प्रारम्भ कर देते है स्वामी विवेकानन्द इस अभेद को मानते हुए व्यवहारिक जीवन में लोकसेवा के माध्यम से उसका उपयोग किये है। लोकसेवा के द्वारा ही नारायण सेवा वही ब्रह्मभाव है। गीता में कहा गया -

"लोकसंग्रहमेवापि सम्पश्यन् कर्तुमर्हसि।"[14]

उन्होंने लोक कल्याण तथा मानवसेवा की भावना से अनुप्रेरित होकर 1897 में गुरु रामकृष्ण परमहंस की मृत्यु के पश्चात् रामकृष्ण मिशन एवं मठ की स्थापना किया तथा सन्यासियों को जनता की सेवा मैं अपने सम्पूर्ण जीवन को उत्सर्ग करने के लिए उपदेश दिया। 1899 मैं जब कलकात्ता में प्लेग फैल गया तब विवेकानन्द ने गरीब बस्तियों में जाकर मनुष्यों एवं कार्यकर्ताओं की प्रोत्साहित किया। उन्होंने कलकात्ता के नागरिकों को बताए-

"वे भय को दूर करें और प्लेग निरोधक साधनों को समान रूप से अपनायें। उन्होंने जनता को विश्वास दिलाया कि रामकृष्ण मिशन पूर्ण शक्ति से उनकी सहायता करेगा।"[15]

वह अपने शिष्यों को उद्धृत करते हुए कहा-

"तुम लोग हममें (श्री रामकृष्ण के शिष्यों में) जो पहले सोचा करते थे कि कोई शक्ति नहीं, वे ही अब अनाथालय, दुर्भिक्ष कोष आदि कितनी ही संस्थाएँ खोल रहे हैं। देखते नहीं, निवेदिता ने अंग्रेज लड़की होकर भी तुम लोगों की सेवा करना सीखा है और तुम लोग अपने ही देशवासियों के लिए ऐसा नहीं कर सकोगे ? जहाँ पर महामारी हुई हो, जहाँ पर जीवों को दुःख ही दुःख हो, जहाँ दुर्भिक्ष पड़ा हो, चला जा उस ओर। अधिक से अधिक क्या होगा, मर ही तो जायेगा। एक महान उद्देश्य को लेकर मरना ठीक है और तभी देश का कल्याण होगा।"[16]

राष्ट्र की सुरक्षा तथा समृद्धि भी व्यक्तियों में एकता की भावना से ही सम्भव है। और वह एकता आध्यात्मिकता के आधार पर ही हो सकता है। उनका कथन है-

“सबसे पहले अपनी जाति की समस्त आध्यात्मिक शक्तियों को ढूँढ़ निकालना होगा, जैसा कि अतीत काल में किया गया था और चिरकाल तक किया जायेगा। अपनी बिखरी हुई आध्यात्मिक शक्तियों को एकत्रित किया जाना ही भारत में जातीय एकता स्थापित करने का एक मात्र उपाय है।”[17]

उन्होंने वेदान्त के मूल सिद्धान्त एकत्व तथा अखण्ड भाव को स्वीकार करते हुए पशुओं से लेकर उच्चतम प्राणी तक सभी में समत्व प्रतिष्ठित किये है। वह वेदान्त को समर्थन करते हुए कहा है-

“हमें अपने जीवन की सभी अवस्थाओं में उसे कार्यरूप में परिणत करना होगा, केवल यही नहीं, अपितु आध्यात्मिक और व्यवहारिक जीवन के बीच जो एक काल्पनिक भेद है उसे भी मिटाना पड़ेगा; क्योंकि वेदान्त एक अखण्ड वस्तु के सम्बन्ध में उपदेश देता है वेदान्त कहता है कि एक ही प्राण सर्वत्र विद्यमान है।”[18]

इसप्रकार से वह वेदान्त के सिद्धान्त्र को समर्थन करके वैश्विक भाईचारे की ओर संकेत किया है।

स्वामी विवेकानन्द ने भावनाओं की एकता, सामाजिक जागृति, पाश्चात्य देशों की व्यवहारिक सक्रियता तथा भारतीय परम्पराओं और आध्यात्मिक जागृति से समृद्ध भारत का निर्माण चाहते थे। । अत: वह भारतीयों को साहसी, जागृत तथा क्रियाशील देखना चाहते थे। उनके मतानुसार वेदान्त सत्य के अनुकूल आधारों से ही राष्ट्र की प्रगति हो सकता। अपने इतिहास की गरिमा पर विश्वास करके ही भारतीयों में राष्ट्र प्रेम, देश भक्ति, संगठन शक्ति, आत्मनिर्भरता की प्राप्ति हो सकता। उनका कथन है -

“केवल वेदान्त ही अपने सर्वोच्च रूप में व्यक्तियों की सामाजिक आकांक्षाओं को आध्यात्मिकता प्रदान कर सकता है और जिन विविध तत्वों से राष्ट्र निर्मित हैं, उनका न केवल आध्यात्मीकरण बल्कि उनको आत्मसात भी कर सकता है।”[19]

स्वामी विवेकानन्द के मतानुसार मानव समाज के विकास का मूल आधार है- स्वतन्त्रता, जो व्यक्ति के आतर्शमय जीवन के विकास के लिए परम आवश्यक है। यह स्वतन्त्रता ही चेतन जीवन का सार तथा विकास का पहली शर्त है। जो व्यक्ति बन्धन से मुक्त नहीं हो पाता वह कभी आगे नहीं बढ़ सकता। इसीलिए मानव जीवन का चरम लक्ष्य है- स्वाधीनता की प्राप्ति करना। स्वामी भाव से कृत कर्म श्रेष्ठ होता है। इसलिए स्वामी विवेकानन्द ने मानव को अपने अस्तित्व एवं उनमें विद्यमान अपरिसीम शक्ति का आभास कराते हुए स्वतन्त्र तथा स्वामी भाव से निरन्तर कर्म करने की प्रेरणा दिया है। उन्होंने कर्म को स्पष्ट करते हुए कहा है – “कर्म मनुष्य की स्वतंत्रता की यह चिर प्रतिज्ञा है। यदि हम स्वयं को अपने कर्म से नीचे गिरा सकते हैं, तो निश्चय ही यह हमारी क्षमता में है कि हम उसके द्वारा अपने को ऊँचा उठायें।”[20]

साथ ही साथ मनुष्य के जीवनधारण के लिए चरम आवश्यक है उसकि आर्थिक स्वतन्त्रता। इस आर्थिक स्वतन्त्रता का अभिप्राय है - व्यक्ति का आर्थिक चित्ताओं के विनाश तथा सम्पद के अर्जन, धारण एवं व्यय की स्वतन्त्रता। आर्थिक स्वतन्त्रता का अर्थ है - धन सम्पत्ति का सर्वसाधारण में सठिक रूप से उपयोग से है। वह कहा है - "मेरे तुम्हारे धन आदि छीन लेने में कोई बाधा न रहने का नाम तो स्वाधीनता है नहीं,बल्कि धन के बिना दूसरों को हानि पहुँचाये उपभोग करने का नाम ही स्वाधीनता है।"[21]

उन्होंने अनुभव किया था कि - बहुत संख्यक निर्धन जनता के उत्थान के उपर ही भारत का उभ्यान निर्भर करता है। इसलिए स्वामी विवेकातन्द ने आर्थिक स्वतन्त्रता को विशेष महत्व दिया है।

आर्थिक स्वतन्त्रता के साथ ही स्वामी विवेकानन्द ने धार्मिक स्वतन्त्रता पर भी जोर दिया है। इस धार्मिक स्वतन्त्रता का अभिप्राय यह है कि - व्यक्ति को अपनी निज आस्था और विश्वास के आधार पर ही किसी धर्म मानना तथा ईश्वर के उपासना करने की पूर्ण अधिकार है। उनका कथन है-

"हर किसी को अपना धर्म स्वयं चुनने की स्वतन्त्रता देनी चाहिए, किसी दूसरों को उसी की उपासना करने के लिए विवश नहीं करना चाहिए।"[22]

स्वामी विवेकानन्द के अनुसार अधिक नियमों के पालन की प्रवृति व्यक्ति के स्वतन्त्रता के लिए बाधक है तथा सामाजिक क्षेत्र में अवनति का एक मुख्य कारण है। किन्तु इसका मतलब यह नहीं कि- व्यक्ति को नियम पालन से सर्वथा मुक्त कर दिया जाएं। क्योंकि अधिकांश व्यक्ति अज्ञानी है।जब तक व्यक्ति का आत्मज्ञान न हो जाता तब तक उसको नियम पालन करना चाहिए और जब उसका आत्मज्ञान हो जाता तब वह समस्त नियमों से परे हो जाता। उसके अन्दर मुक्ति की भावना जागृत हो जाता जो आध्यात्मिक स्वतन्त्रता का मुख्य उद्देश्य है।

इसके साथ ही साथ वह राजनैतिक स्वतन्त्रता के क्षेत्र में भी गुरुत्व दिया है। उनके रचित 'सन्यासी का गीत' शीर्षक कविता से भारतवासी स्वतन्त्रता का मूल्य सीखा है, जहाँ सभी बन्धनों से मुक्त होने के लिए प्रोत्साहित किया गया है-

"तोड़ो सब श्रृंखला, उन्हें निज जीवन बन्धन जान
हों उज्ज्वल कांचन के अथवा क्षुद्र धातु के म्लान
प्रेम घृणा, सद् असद् सभी ये द्वन्द्वों के संधान!
दास सदा ही दास समाप्त किंवा ताड़ित, परतंत्र
स्वर्ण निगड़ होने से क्या वे सुदृढ़ न बंधन यंत्र?
अतः उन्हें सन्यासी तोड़ो छिन्न करो गा मंत्र,
ओम् तत्सत् ओम् !"[23]

इसप्रकार से स्वामी विवेकानन्द ने सामाजिक, आर्थिक तथा राजनैतिक क्षेत्रों में स्वतन्त्रता को प्रतिपादित किया है। यह स्वतन्त्रता की कल्पना करना ही एक सच्ची कल्पना है। उनके मत में जहाँ तक दूसरी की हानि न पहुँचे वहाँ तक ही व्यक्ति को कार्य करते की स्वतन्त्रता है। वह इस स्वतन्त्रता सम्बन्धी विचारों का मूल स्रोत के रूप में वेदान्त दर्शन को माना है ।वह कहा है -

"वेदान्त का अभिमत है कि आत्मा बद्ध नहीं है वरन् नित्य मुक्त है यहीं नहीं बल्कि अपने को वृद्ध सोचना भी अनिष्टकारक है। ब्रह्म तो भ्रम है आत्मा सम्मोहन है। ज्यों ही तुमने कहा कि मैं बृद्ध हूँ, दुर्बल हूँ त्यों ही तुम्हारा दुर्भाग्य आराम्भ हो गया, तुमने अपने पैरों में एक और बेड़ी डाल ली।"[24]

इस वेदान्त दर्शन का एक अभिमत है 'तत्त्वमसि' - जो छान्दग्योपनिषद में प्रतिपादित है। जिसका अर्थ है- 'वह ब्रह्म तुम्हीं हो'। स्वामी विवेकानन्द के अनुसार जीवन का सर्वोच्च लक्ष्य है - ब्रह्म साक्षात्कार अथवा मोक्षप्राप्ति। किनु वर्तमान में मानवजाति इन परम आदर्श से विमुख ही गये है, वह परम सत्ता के साथ अपना सामञ्जस्य का वोध नहीं कर पाता। इसीलिए स्वामी विवेकानन्द व्यक्ति का आत्मोन्नति तथा राष्ट्र निर्माण के निमित्त चार मार्ग दर्शाया है-

कर्मयोग, भक्तियोग, राजयोग एवं ज्ञानयोग।

(अ) कर्मयोग - कर्मयोग द्वारा मन को शुद्ध करना है। शुभ या अशुभ कर्म किए जाने पर शुभ या अशुभ परिणाम निश्चित रूप से उत्पन्न होगा क्योंकि कारण विद्यमान होने पर कोई भी शक्ति उसे रोक नहीं सकती। अतएव जब तक शुभ और अशुभ कार्य, शुभ और अशुभ फल उत्पन्न करते रहेंगे तब तक कभी भी मोक्ष प्राप्त करने की आशारहित आत्मा शाश्वत बन्धनों में पड़ी रहेगी। कर्म केवल शरीर तथा मन से समृद्ध होता है, आत्मा से नहीं, वह आत्मा के समक्ष एक आवरण उत्पादन कर सकता है।

(आ) भक्तियोग - परमसत्ता के साथ अपना सामञ्जस्य का बोध करने के लिए भक्ति एक सरल मार्ग है। इस विश्व की नैसर्गिक स्थिति आकर्षण की है और उसका अन्त वियोग में होता है। यद्यपि मानव हृदय में प्रेम, मिलन नैसर्गिक प्रेरणा है और वह स्वयं क्लेश का कारण है तथापि सम्यक् पात्र के प्रति सम्यक् रूप से निर्दिष्ट होने पर वह मुक्ति प्रदान करता है।

(इ) राजयोग - यह विद्या पहले मानव को उसकी आभ्यन्तरिक अवस्थाओं के पर्यवेक्षण का मार्ग दिखाती है। मन ही उस पर्यवेक्षण का यन्त्र है। ज्ञानलाभ ही दुःखों से मुक्ति का उपाय है और यह मन की एकाग्रता के द्वारा ही सम्भव है, राजयोग हमें इसका ही शिक्षा देता है।

(ई) ज्ञानयोग - इसके तीन अङ्ग है -

१. इस सत्य का श्रवण करना कि आत्मा ही एकमात्र वास्तविक है और सब माया है।

२. इसका सभी दृष्टिकोणों से मनन।

३. इसके आगे सारे तर्क वितर्क को वर्जित करके सत्य की अनुभूति प्राप्त करना।

यह अनुभूति चार प्रकार से प्राप्त होती है -

१. इस बात से निश्चय करना कि ब्रह्म ही सत्य है और सब मिथ्या है।

२. भोग की समग्र इच्छा का त्याग।

३. मन और इन्द्रियों का संयम।

४.मुक्त होने की तीव्र आकांक्षा।

सत्य की सतत धारणा आत्मा को उसके वास्तविक स्वरूप का सदैव स्मरण कराते रहना ही ज्ञानयोग का मार्ग है। इस योग को बुद्धि द्वारा बहुत लोग ग्रहण कर लेते है, लेकिन इसकी सिद्धि कम लोग कर पाते है।

स्वामी विवेकानन्द राष्ट्रीय जागरण के साधन के रूप में शिक्षा को महत्त्व दिया है। राष्ट्र तथा देश की योग्यता तथा क्षमता वृद्धि तभी होती है जब उस देश के नागरिक शिक्षित हो। स्वामी विवेकानन्द ऐसे शिक्षा पर बल दिए थे जिसके द्वारा व्यक्ति की आत्मोन्नति हो, जो व्यक्ति को एक सत् चरित्र की निर्माण में सहायता कर सकता एवं आत्मनिर्भर तथा विविध चुनौतियों से निपटने में सक्षम बना सकता। वह शिक्षा के माध्यम से ही जनसाधारण तथा समस्त पद दलित मानव के उत्थान को माना है। उनका कथन है-

"देश में राष्ट्रीय जागृति लाने के लिए सभी लोगों का शिक्षित होना अनिवार्य है। इसलिए उन्होंने स्त्री को भी शिक्षा देने के विषय में अपने विचार व्यक्त किये वे उन्हें केवल पूजा पाठ की शिक्षा देना ही उचित नहीं समझते, अपितु धर्म, कला, साहित्य, स्वास्थ्य रक्षा, शिशु पालन आदि सभी विषयों में उन्हें पारंगत देखना चाहते थे। बालिकाओं के समक्ष सर्वत्र आदर्श चरित्रों को रखना आवश्यक है।"[25]

वह जनसाधारण को आत्मनिर्भर एवं प्रोत्साहित करने के लिए कहा है-

"तुम शूद्र स्वरूप हो, उठो जागृत हो जाओ। हे शक्तिमान यह नींद तुम्हें शोभा नहीं देती। आओ जागो उठो, तुम अपने को दुर्बल समझते हो यह तुम्हारे लिए उचित नहीं है।"[26]

उनके मत में राष्ट्र की उन्नति और अवनति का मूल मनुष्य ही है। इसीलिए वह मनुष्य का सठिक चरित्र निर्माण में सर्वदा ध्यान दिया। उन्होंने मनुष्य के उद्देश्य में कहा-

"बलवान समर्थ, दक्ष आत्मविश्वास पूर्ण तथा श्रद्धा और सरलता से युक्त युवक चाहिये। ऐसे एक सौ युवक मिल जाये तो सम्पूर्ण विश्व का काया कल्प हो जाये।"[27]

निष्कर्ष

19 वीं शताब्दी में आविर्भूत स्वामी विवेकानन्द भारत के समाज सुधारक तथा राष्ट्रीय जागरण में एक अनन्य व्यक्तित्व थे। उनके अनुसार यह जागरण अज्ञान, अन्धविश्वास, अशिक्षा, पराधीनता को दूर करके मोक्षप्राप्ति, आत्मविश्वास, शिक्षा और स्वातन्त्रता की और है। व्यक्तियों से ही राष्ट्र निर्मित होता इसीलिए वह व्यक्तियों में मानवता, सम्मान की भावना, विश्ववन्धु अर्थात् मनुष्य मनुष्य में सुहृद्भाव की विकसित करना चाहते थे। इसके साथ साथ वह भारतीयों में आत्मविश्वास को विकसित करना चाहते थे क्योंकि उनका मानना था कि इसमार्ग से ही भारतीयों अपना उत्थान कर सकते है। व्यक्ति स्वयं के उपर विश्वास रखकर ही कोई भी कार्य करने में समर्थ होता वह तभी विफल होता जब वह स्वीय शक्ति को प्रमाण करने में पूर्ण संघर्ष नहीं करते तथा अपने उपर विश्वास नहीं रख पाते। वह राष्ट्र निर्माण के निमित्त कर्मयोग, भक्तियोग, राजयोग, ज्ञानयोग का आदर्श प्रतिपादित किया। उनका अपने जीवन का प्रधान लक्ष्य था - मानव निर्माण, क्योंकि यह ही राष्ट्र निर्माण तथा विश्वनिर्माण की पहला कदम है। वह भारतवासियों के अन्दर साहस, उत्साह तथा कर्मठता की भावना, आत्मविश्वास एवं आध्यात्मिकता की भावना को जागृत करके राष्ट्रीय जागरण में अपना अनन्य भूमिका निभाया।

संदर्भ

1. श्रीमद्भगवद्गीता4. 7-8
2. रोम्या रोला - विवेकानन्द, पृ. 34
3. विवेकानन्द साहित्य - छठा खण्ड, पृ. 59
4. स्वामी मुख्यानन्दपुरी-स्वामी विवेकानन्द और नया भारत, पृष्ठ संख्या-34
5. स्वामी विवेकानन्द साहित्य - षष्ठ खण्ड , पृष्ठ संख्या- 344
6. स्वामी विवेकानन्द साहित्य - प्रथम खण्ड, पृष्ठ संख्या- 4
7. व्यावहारिक जीवन में वेदान्त, प्रथम व्याख्यान, पृष्ठ संख्या-17
8. स्वामी विवेकानन्द साहित्य - तृतीय खण्ड, पृष्ठ संख्या- 325
9. 27 दिसम्बर 1893 के न्यूयार्क हेराल्ड का सम्पादकीय लेख
10. स्वामी विवेकानन्द साहित्य - तृतीय खण्ड, पृष्ठ संख्या- 322-23
11. स्वामी विवेकानन्द साहित्य - पञ्चम खण्ड, पृष्ठ संख्या- 93-94
12. स्वामी विवेकानन्द साहित्य - तृतीय खण्ड, पृष्ठ संख्या- 138
13. स्वामी विवेकानन्द साहित्य - प्रथम खण्ड, पृष्ठ संख्या- 5
14. श्रीमद्भगवद्गीता3. 20
15. शैलेन्द्र नाथ धर- ए कम्प्रीहैसिव बाइयोग्राफी ऑप स्वामी विवेकानन्द, द्वितीय खण्ड, पृष्ठ संख्या 142
16. स्वामी विवेकानन्द साहित्य - षष्ठ खण्ड, पृष्ठ संख्या- 130

17. स्वामी विवेकानन्द साहित्य - पञ्चम खण्ड, पृष्ठ संख्या- 262

18. व्यावहारिक जीवन में वेदान्त, प्रथम व्याख्यान, पृष्ठ संख्या-1

19. स्वामी विवेकानन्द साहित्य - नवम खण्ड, पृष्ठ संख्या- 301

20. स्वामी विवेकानन्द साहित्य - चतुर्थ खण्ड, पृष्ठ संख्या- 253

21. कम्पलीट वर्क्स ऑफ स्वामी विवेकानन्द- सप्तम खण्ड, पृष्ठ संख्या 327

22. स्वामी विवेकानन्द साहित्य - नवम खण्ड, पृष्ठ संख्या-54

23. कविता कोश

24. स्वामी विवेकानन्द साहित्य - द्वितीय खण्ड, पृष्ठ संख्या-186

25. स्वामी विवेकानन्द साहित्य - षष्ठ खण्ड, पृष्ठ संख्या-40

26. स्वामी विवेकानन्द साहित्य - अष्टम खण्ड, पृष्ठ संख्या-15

27. स्वामी विवेकानन्द साहित्य - पञ्चम खण्ड, पृष्ठ संख्या-118

■■■

भरतनाट्यम् में देवदासी परम्परा, वेशभूषा, मुद्रा एवं नायिका-भेद: नृत्यांगना की मनोदशा का सांस्कृतिक एवं मनोवैज्ञानिक अध्ययन

Priya Majumder
Discipline of Sanskrit, School of Humanities
Indira Gandhi National Open University
Dr. Soniya
Discipline of Sanskrit, School of Humanities
Indira Gandhi National Open University

भूमिका

भारतीय शास्त्रीय नृत्य परम्परा में भरतनाट्यम् एक ऐसी समय-सिद्ध एवं सांस्कृतिक रूप से समृद्ध नृत्य-शैली है, जिसकी जड़ें दक्षिण भारत की मन्दिर-परम्परा तथा विशेषत: देवदासी प्रथा में अवस्थित हैं। भारतीय नृत्य-संस्कृति का यह अद्वितीय रूप केवल प्रदर्शन-कला नहीं, बल्कि भक्ति, साधना तथा आत्मानुभूति का सशक्त माध्यम है। देवदासी परम्परा में नृत्य 'देव-सेवा' का अंग था, जिसके माध्यम से नारी अपनी संपूर्ण अस्मिता, भावनात्मक गहराई और आध्यात्मिक चेतना को अभिव्यक्त करती थी।

कालान्तर में सामाजिक, आर्थिक तथा राजनीतिक परिस्थितियों के प्रभावस्वरूप, यद्यपि देवदासी संस्था अनेक प्रकार की अवनति को प्राप्त हुई, तथापि उससे उत्पन्न नृत्य-शैली भरतनाट्यम् आज भी अपनी आध्यात्मिक गरिमा, सौन्दर्यबोध एवं सांस्कृतिक सामर्थ्य को अक्षुण्ण रखे हुए है। नृत्यांगना के मनोभाव, वेशभूषा, आहार्य-अभिनय, मुद्राओं तथा नायिका-भेद की विविध स्थितियों के माध्यम से स्त्री-चेतना का जो गहन रूप सामने आता है, वही इस शोध का आधार है।

प्रस्तुत शोध न केवल भरतनाट्यम् की तकनीकी और सौन्दर्यात्मक विशेषताओं का अध्ययन करता है, बल्कि यह भी विश्लेषित करता है कि देवदासी से आधुनिक नर्तकी तक नारी की मनोदशा में कौन-कौन से सांस्कृतिक, मनोवैज्ञानिक एवं सामाजिक परिवर्तन हुए। भरतनाट्यम् की प्रत्येक मुद्रा, प्रत्येक दृष्टि और प्रत्येक भाव स्त्री के अन्तर्मन की भाषा है, जिसमें उसके संघर्ष, उसकी चेतना, उसकी भक्ति और उसका आत्मबोध सभी समाहित हैं।

भारतीय सांस्कृतिक इतिहास में देवदासी परम्परा अपनी विशिष्ट पहचान के कारण अत्यन्त महत्वपूर्ण रही है। वैदिक युग से लेकर मध्यकाल तक देवदासियाँ भारतीय मन्दिर-संस्कृति का अभिन्न अंग थीं, जिनका मुख्य उद्देश्य नृत्य और संगीत के माध्यम से देवता की आराधना करना था; तथापि कालान्तर में यही साधनात्मक उपासना-पद्धति मन्दिरों को क्रमशः एक व्यापक सांस्कृतिक एवं कलात्मक केन्द्र के रूप में प्रतिष्ठित करने का कारण बनी।'देवदासी' अर्थात् वह स्त्री जो स्वयं को लोक-कल्याण, भक्ति और देव-सेवा में समर्पित कर देती थी। दक्षिण भारतीय राजवंशों विशेषतः चोल, पाण्ड्य और चेर के काल में यह परम्परा उच्च प्रतिष्ठा को

प्राप्त थी। संगम-साहित्य, शिलालेखों, राजतरंगिणी तथा विविध ताम्रपत्रों में देवदासियों की भूमिका, दक्षता और सामाजिक सम्मान का उल्लेख मिलता है।

जग्राह पाठ्यमृग्वेदात् सामभ्यो गीतमेव च।
यजुर्वेदादभिनयान् रसानाथर्वणादपि ॥[1]

नाट्यशास्त्र में नाट्य को वेदों से उद्भूत एक पवित्र एवं लोककल्याणकारी विद्या के रूप में स्वीकार किया गया है, जिसका प्रयोजन केवल मनोरंजन नहीं, अपितु धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष इन चारों पुरुषार्थों की अनुभूति कराना है। इसी नाट्यदृष्टि के अंतर्गत मन्दिरों में नृत्य-संगीत को धार्मिक अनुष्ठान के रूप में स्थान प्राप्त हुआ। देवदासियाँ इस नाट्यपरंपरा की जीवंत साधिका थीं, जो आङ्गिक, वाचिक, आहार्य एवं सात्त्विक अभिनय के माध्यम से देवता के समक्ष भावात्मक अभिव्यक्ति प्रस्तुत करती थीं।

इस प्रकार देवदासी परंपरा को केवल सामाजिक संस्था के रूप में नहीं, बल्कि नाट्यशास्त्रीय सिद्धान्तों पर आधारित एक साधनात्मक कला-परंपरा के रूप में समझा जाना चाहिए, जहाँ नृत्य और संगीत 'भक्ति' तथा 'रसानुभूति' के माध्यम बनते हैं। नाट्यशास्त्र में निहित रस, भाव और अभिनय की संकल्पना ने इस परंपरा को दार्शनिक एवं सौन्दर्यशास्त्रीय आधार प्रदान किया, जिसके कारण देवदासी परंपरा भारतीय शास्त्रीय नृत्य और संगीत की विकासधारा में एक केंद्रीय स्थान ग्रहण करती है। देवदासियाँ नृत्य, संगीत, साहित्य और अभिनय-कला में निपुण होती थीं और नाट्यशास्त्र में वर्णित अभिनय-चतुष्टय आङ्गिक, वाचिक, आहार्य और सात्त्विक की प्रत्यक्ष साधिका मानी जाती थीं।

आङ्गिको वाचिकश्चैव ह्याहार्यः सात्त्विकस्तथा।
चत्वारोऽभिनया ह्येते विज्ञेया नाट्यसंश्रयाः॥[2]

यह परम्परा उस समय नारी को एक स्वतंत्र सांस्कृतिक पहचान देती थी। परन्तु मध्यकाल से उपरान्त सामाजिक मान्यताओं, राजनीतिक अस्थिरता और पितृसत्तात्मक विचारधारा ने इस परम्परा पर प्रश्नचिह्न लगाए। देवदासी, जो मन्दिर की समर्पित सेविका थी, धीरे-धीरे सामाजिक संरचना के दबावों और आर्थिक दुरुपयोग का शिकार बनने लगी। तथापि, इसके मूल में जो भक्ति, कला और आध्यात्मिकता थी, उसने भरतनाट्यम् को एक ऐसी शक्तिशाली नृत्य-परम्परा के रूप में विकसित किया जिसमें स्त्री की चेतना और उसकी कलात्मक क्षमताएँ अद्भुत रूप से प्रकट होती हैं।

देवदासी का जीवन विरोधाभासों का एक जटिल संगम रहा एक ओर वह देव-उपासिका, भक्त और कलाकार थी; दूसरी ओर सामाजिक संरचना के भीतर उसे सीमाओं, संघर्षों और गलत धारणाओं का सामना करना पड़ता था। नृत्य-प्रदर्शन के समय देवदासी

अपनी भावनाओं, विरह, प्रेम, भक्ति और तद्रूप आध्यात्मिक अनुभवों को कला के माध्यम से व्यक्त करती थी, जिससे उसकी मनोदशा का सूक्ष्मतम स्तर भी प्रकट होता था।

अवस्थाभिर्भवन्त्यष्टावेताः षोडश भेदिताः ।
स्वाधीनभर्तृका तद्वत्खण्डिताथाभिसारिका ॥
कलहान्तरिता विप्रलब्धा प्रोषितभर्तृका ।
अन्या वासकसज्जा स्याद्विरहोत्कण्ठिता तथा ॥[3]

स्वाधीना नायिका,अभिसारिका,प्रोष्टपतिका,खण्डिता,विप्रलभ्धा इत्यादि वर्ग, मनोविज्ञान की दृष्टि से स्त्री-भावनाओं के विभिन्न रूपों का प्रतिनिधित्व करते हैं। ये नायिकाएँ केवल काव्य की कल्पनाएँ नहीं, बल्कि नारी के भाव-जगत की यथार्थ मनोवैज्ञानिक स्थितियाँ हैं, जिन्हें नृत्यांगना अपनी देह-भाषा, दृष्टि-भंगिमा, मुद्रा और लय के माध्यम से सजीव बनाती है। इस प्रकार भरतनाट्यम् में नारी की भावाभिव्यक्ति केवल कलात्मक प्रदर्शन नहीं, बल्कि एक मनोवैज्ञानिक यात्रा है स्वयं को पहचानने, स्वीकार करने और अभिव्यक्त करने की यात्रा।

भरतनाट्यम् की वेशभूषा केवल सौन्दर्य-वर्धक नहीं, बल्कि गहन प्रतीकात्मकता से युक्त है। पारम्परिक मंदिर-नृत्य से प्राप्त यह वेशभूषा भक्ति, पवित्रता और स्त्री-सम्मान की अभिव्यक्ति है।

साड़ी का सुसंवलित प्रावरण-विन्यास नर्तकी के अरमंडी में बैठते ही कमल के आकार में खुलता है, जो गतिन्याय और रुचि को अभिव्यक्त करता है। यह पवित्रता, उद्भव और दिव्यता का प्रतीक है। वस्त्रों के रंग लाल, पीत, हरित, नील अलग-अलग सांस्कृतिक-संस्पर्शों का प्रतिनिधित्व करते हैं। अलंकरण - ओडियानम्, कर्णफूल, नथ, मुकुट, बाजूबन्द, पायल और घुँघरू न केवल सौन्दर्य के अंग हैं, बल्कि नृत्य की लयात्मकता, नारीत्व और देवत्व की अभिव्यक्ति का अंग बनते हैं। आहार्य-अभिनय में वेशभूषा का चयन रसानुकूल और चरित्रानुकूल होता है। उदाहरणतः स्वाधीना नायिका के लिए सशक्त एवं उज्ज्वल रंग, करुण या विप्रलभ्धा नायिका के लिए मृदु या गाढ़े रंग, भक्ति-रस के लिए पीत या श्वेत रंग के वेश इत्यादि का प्रयोग मनोवैज्ञानिक अभिव्यक्ति को समर्थ बनाता है। वेशभूषा और आहार्य, नर्तकी की भाव-संरचना को दृश्य-रूप प्रदान करते हैं।

भरतनाट्यम् की पूरी संरचना मुद्रा-प्रणाली पर आधारित है। नाट्यशास्त्र, अभिनवभारती तथा दक्षिण भारतीय नाट्य-प्रविधियों में वर्णित हस्त-मुद्राएँ केवल शारीरिक संकेत नहीं, बल्कि नारी की चेतना, प्रकृति, भाव और सांस्कृतिक मान्यताओं की मूर्त अभिव्यक्तियाँ हैं। नेत्राभिनय, भृकुटि-विन्यास, ग्रीवा-भंगिमा, हस्त-मुद्राओं और चरण-चर्या के माध्यम से नृत्यांगना भावों को सजीव कर देती है। भारतीय शास्त्रीय नृत्य परंपरा में हस्तमुद्राओं का अत्यंत महत्त्वपूर्ण स्थान है। नृत्य-अभिनय में भावों, वस्तुओं तथा

घटनाओं की अभिव्यक्ति हेतु एकहस्त एवं संयुक्त दोनों प्रकार की मुद्राओं का विधान प्राप्त होता है। भरतनाट्यम् सहित भारतीय शास्त्रीय नृत्य शैलियों में प्रचलित चतुर्विंशति (२४) संयुक्त हस्तमुद्राओं का प्रामाणिक निरूपण अभिनय दर्पणम् में उपलब्ध है, जो नन्दिकेश्वर कृत एक अत्यंत महत्त्वपूर्ण अभिनय-ग्रन्थ है। अभिनय दर्पणम् के अनुसार, संयुक्त हस्तमुद्राएँ दोनों हाथों के संयोजन से निर्मित देवस्तुति, पूजन, प्राकृतिक तत्त्वों, आयुधों, पशु-पक्षियों तथा दार्शनिक प्रतीकों की अभिव्यक्ति में प्रयुक्त होती हैं। इन मुद्राओं का प्रयोग विशेषतः देवालय-परंपरा, नृत्यनाट्य तथा भक्ति-प्रधान अभिनय में दृष्टिगोचर होता है।

अञ्जलिः कापोतश्चैव कर्कटः स्वस्तिकस्तथा।
दोलाहस्तः पुष्पपुटः उत्सङ्गः शिवलिङ्गकः॥
कटको वर्धमानश्च कर्तरीस्वस्तिकस्तथा।
शङ्खचक्रं च सम्पुटः पाशकीलक एव च॥
मत्स्यः कूर्मो वराहश्च गरुडो नागबन्धकः।
खट्वा भेरुण्डकश्चैव मृगशीर्षो मयूखकः॥
अर्घ्यः शिवहस्तश्चैव ज्ञेयाः संयुक्तहस्तकाः॥[4]

भरतनाट्यम् की नृत्यपरम्परा में अभिनय-चतुष्टय आङ्गिक, वाचिक, आहार्य और सात्त्विक का संगठित प्रयोग नर्तकी की सम्पूर्ण अभिव्यक्ति का आधार बनता है। आङ्गिक अभिनय के अन्तर्गत हस्त-मुद्राएँ, नेत्राभिनय, गात्रीय गति-विन्यास तथा शरीर-भंगिमाएँ अभिव्यक्ति का मुख्य माध्यम बनती हैं, जिनके द्वारा नर्तकी अपने चरित्र, प्रसंग तथा भाव-संकेतों को सुस्पष्ट रूप में प्रस्तुत करती है। वाचिक अभिनय यद्यपि भरतनाट्यम् में प्रत्यक्ष संवाद के रूप में उपस्थित नहीं होता, तथापि पद-पाठ, गीत, स्वर-लय तथा संगीतात्मक वातावरण के माध्यम से नृत्य प्रदर्शन को दृढ़ करता है और अभिव्यक्ति को भावानुकूल दिशा प्रदान करता है। आहार्य अभिनय वस्त्राभरण, प्रावरण-विन्यास, केश-सज्जा तथा रंगमंचीय समायोजन के माध्यम से बाह्य-सौन्दर्य और चरित्र-विशेष की पहचान को स्पष्ट करता है; विशेषतः साड़ी का विन्यस्त-वल्नित प्रावरण-विन्यास नृत्य-गतियों की रेखाओं को विशेष शैलीगत सौन्दर्य को प्रकट करता है।

स्तम्भः स्वेदोऽथ रोमाञ्चः स्वरभङ्गोथ वेपथुः ।
वैवर्ण्यमश्रु प्रलय इत्यष्टौ सात्त्विकाः स्मृताः ॥[5]

सात्त्विक अभिनय भरतनाट्यम् की अभिव्यक्ति का सर्वाधिक सूक्ष्म और आन्तरिक आयाम है, जिसके द्वारा नर्तकी नवरसों श्रृङ्गार, हास्य, करुण, रौद्र, वीर, भयानक, बीभत्स, अद्भुत और शान्त को मनोभावों की अन्तर्मुखी संवेदनाओं के माध्यम से उद्भासित करती है।

श्रृङ्गार-हास्य-करुण-रौद्र-वीर-भयानकाः ।
बीभत्सोऽद्भुत इत्यष्टौ रसाः शांतस्तथा मतः ।।[6]
रतिर्हासश्च शोकश्च क्रोधोत्साहौ भयं तथा।
जुगुप्सा विस्मयश्चेत्थमष्टौ प्रोक्ताः शमोपि च ।।[7]

श्रृङ्गार में स्मित-हास, अनुराग या लज्जा; हास्य में हर्ष-विकास; करुण में दैन्य या अश्रु-प्रवाह; तथा अन्य रसों में तदनुरूप भाव-चेष्टाएँ नर्तकी के अन्तर्मन से उत्पन्न होकर सात्त्विक रूप में प्रकट होती हैं। इस प्रकार भरतनाट्यम् में अभिनय-चतुष्टय का समन्वित रूप नृत्य को दृश्य, श्रव्य, सौन्दर्यात्मक और भावात्मक, इन समस्त आयामों में पूर्णता प्रदान करता है तथा नृत्य को रस-प्रधान, जीवंत और प्रभावशाली बनाता है। देवदासी इन सभी का संतुलित और सहज प्रयोग करने में निपुण होती थीं, जिससे उनके नृत्य में भावोन्मेष और रस-निष्पत्ति स्वाभाविक रूप से सम्भव होती थी।

भरतनाट्यम् में नायिका-भेद की परम्परा के माध्यम से नारी के विभिन्न भाव प्रेम, विरह, क्रोध, गर्व, समर्पण, आनन्द आदि अभिव्यक्त होते हैं। स्वाधीना नायिका का आत्मविश्वास, अभिसारिका की उत्कंठा, वासकसज्जा की सौन्दर्याभिलाषा और विप्रलभ्धा की पीड़ा—ये सब नारी जीवन के यथार्थ अनुभव हैं। नृत्यांगना इन अनुभवों को केवल प्रस्तुत नहीं करती, बल्कि स्वयं जीती है। यही कारण है कि भरतनाट्यम् में नारी केवल पात्र नहीं, बल्कि भाव-लोक की सर्जक है।

आधुनिक युग में देवदासी-परम्परा का रूपांतरण एक महत्वपूर्ण सामाजिक-सांस्कृतिक घटना है। चाहे वह रुक्मिणी देवी अरुंडेल द्वारा भारतीय नृत्य की पुनर्खोज हो, या बलासरस्वती द्वारा परम्परागत पदों और अभिनय-परम्पराओं का पुनर्जीवन सभी प्रयासों ने भरतनाट्यम् को वैश्विक मंच तक प्रतिष्ठित किया। आधुनिक नृत्यांगना के लिए भरतनाट्यम् केवल परम्परा का पुनरावर्तन नहीं, बल्कि उसके माध्यम से अपनी पहचान, अपनी आवाज़ और अपनी आध्यात्मिक चेतना को व्यक्त करने का साधन है। आज की नर्तकी परम्परा और आधुनिकता, नारीत्व और स्वाधीनता, भक्ति और आत्मबोध तीनों को सन्तुलित करते हुए एक नई सांस्कृतिक अभिव्यक्ति गढ़ रही है।

प्रस्तुत अध्ययन से यह स्पष्ट होता है कि भरतनाट्यम् केवल एक नृत्य-शैली नहीं, बल्कि भारतीय समाज में स्त्री की सांस्कृतिक, कलात्मक और मनोवैज्ञानिक चेतना का गहन प्रतिरूप है। देवदासी परम्परा ने नृत्य को भक्ति और आध्यात्मिकता की ऊँचाई दी, जबकि आधुनिक नृत्यांगना ने उसे आत्मबोध, स्वतंत्रता और अभिव्यक्ति का स्वर दिया।

वेशभूषा, मुद्राएँ, नायिका-भेद और आहार्य-अभिनय नृत्यांगना के अन्तर्मन की भाषा बनकर उभरते हैं। भरतनाट्यम् के माध्यम से नारी देह, मन और चेतना तीनों स्तरों पर आत्मानुभूति और आध्यात्मिक उत्कर्ष प्राप्त करती है। इस प्रकार भरतनाट्यम् उन जटिल मानसिक और सांस्कृतिक अनुभवों को अभिव्यक्त करता है जिन्हें केवल शब्दों में व्यक्त करना सम्भव नहीं। यह कला नारी के अन्तर्मन की यात्रा है भक्ति से आत्मबोध तक, परम्परा से आधुनिकता तक, और मनोव्यथा से आध्यात्मिक उत्थान तक।

संदर्भ

1. नाट्यशास्त्र (प्रथमोऽध्यायः - श्लोक 17)
2. नाट्यशास्त्र (षष्ठोऽध्यायः - श्लोक 24)
3. साहित्यदर्पण: (तृतीयः परिच्छेदः - श्लोक 72-73)
4. अभिनय दर्पणम् (आचार्य नन्दिकेश्वर)
5. नाट्यशास्त्र (षष्ठोऽध्यायः - श्लोक 23)
6. साहित्यदर्पण: (तृतीयः परिच्छेदः - श्लोक 182)
7. साहित्यदर्पण: (तृतीयः परिच्छेदः - श्लोक 175)

■■■

Family Value Enlightenment as the Core of Panch Parivartan: Pathway to Social Cohesion

Dr. Rachna Bhopal
Assistant Professor, Department of Commerce
Kamala Nehru College, University of Delhi, New Delhi

Introduction

The modern societies are facing more complex issues like social disintegration, moral decline, destruction of social morale, and environmental destruction. The fast process of globalization, urbanization and technological development, in promoting economic growth, have also led to dislocation of cultures and individualism, at the expense of collective good (Giddens, 2023). These changes are also complicated in the Indian context by socio-economic inequalities, urban-rural divisions, and the erosion of indigenous knowledge systems that in the past ensured social harmony and natural ecological balance (Sharma, 2024). To address these concerns, the increasing awareness of the need to use culturally based and community-rooted systems that encourage holistic development has become a reality.

The Rashtriya Swayamsevak Sangh (RSS) initiated the Panch Parivartan Abhiyan in its centenary year and is slowly coming out as a national movement to bring about social change. The conceptual framework at the centre of the centenary and post-centenary projects of the RSS is Panch Parivartan, denoting the five essential transformations that the organisation believes are essential to the holistic growth of Indian society. These five dimensions of social harmony, family awakening, environmental awareness, civic responsibility, and self-reliance are the main topics of discussions for Hindu Sammelans and shakha activities all over the nation. The framework has been introduced in a very inclusive way because issues such as environmental protection and civil responsibility are not limited to a particular community. In this way, the RSS aims to develop broader social activity around the issues that ultimately relate to its larger ideological focus.

The Panch Parivartan (Five Transformations) is one such native program, focusing on value-based reconstruction of the society on five major levels, namely: Swadeshi (self-reliance), Kutumb Prabodhan (family strengthening), Samajik Samrasta (social harmony), Paryavaran Sanrakshan (environmental protection), and Nagarik Kartavya (civic responsibility). Unlike the traditional development paradigm that largely concentrates on economic indicators, Panch Parivartan is a value-based and integrating approach aligning moral, social, and ecological dimensions of development. The key feature of this framework is its strategic focus on universal values a way of promoting a broader involvement and discussion. Instead of emphasizing explicit ideological articulation, the framework embraces an

inclusive discourse that is capable of aligning social interests to long-term organisational goals. This is an indication of an evolutional approach that integrates cultural communications with social mobilisation.

Panch Parivartan unites such aspects as family awareness, citizenship values, and Swadeshi in a single, family-based model of development. It will affect the overall trends of economic behaviour and social responsibility by highlighting the importance of forming value at the household level. This bottom-up model is contrasted to the strictly policy-based or market-oriented development models, which emphasize the need to focus on cultural continuity, ethical interactions, and collective wellbeing as the key documents of the sustainable development.

The significance of such frameworks resonates with global discourses on sustainable development and well-being. The United Nations Sustainable Development Goals (SDGs) support inclusive development, environmental preservation, and societal integration, which resemble the values that are implemented in Panch Parivartan (United Nations, 2015). the concept aligns with indigenous development perspectives that emphasize local knowledge, community involvement and cultural continuity as essential drivers of sustainable development (Esteva and Prakash, 2014). Despite its philosophical and practical relevance, Panch Parivartan remains underexplored in empirical and theoretical studies examining its role in fostering societal well-being. The present study fills this gap by placing Panch Parivartan in the broader context of theoretical perspectives social transformation, community development, and sustainable well-being, thereby contributing to both academic discourse and policy implications.

Literature review

Indigenous knowledge system and development

The value of indigenous knowledge systems in ensuring sustainable and inclusive development has gained considerable attention in recent decades. According to researchers, the problem-solving models based on local culture and traditions are more efficient to solve the community-related challenges and provide the long-term sustainability (De Souza Briggs, 2005). Traditional and local customs in India (self-reliance, community co-operations, environmental stewardship) plays a significant role in creating resilient social forms (Sharma, 2024). It is possible to interpret Panch Parivartan within this paradigm because it is an indigenously based scheme, that incorporates the culture values with the developmental goals. It is also based on Swadeshi, an element of Gandhian ideas of self-reliance and decentralized economies, which have been acclaimed as models of sustainability in contrast to globalized economic systems (Gasper, 2020).

Social capital and community cohesion

Social capital concept which is described as the networks, norms and trusts that enable coordination and collaboration is an important component in the welfare of the society (Putnam, 2000). Social capital correlates with better governance, less conflict and better life. The concept of interpersonal trust, collective identity, and support are in line with the concept of Panch Parivartan that aims at strengthening families and promoting social harmony. Empirical research in rural India has shown that community programs especially Self-Help Groups (SHGs) have a great impact on promoting social cohesion and empowerment (Deininger & Liu, 2013). These findings provide indirect support for Panch Parivartan's emphasis on grassroots-level transformation.

Value-based development and ethical foundation

Value-based Development is concerned with the significance of ethics, morality and cultural norms to make societies sustainable. The capability approach highlights that development should not merely be measured in economic terms but also in terms of individuals' freedoms and well-being. Similarly, Indian philosophies also propose the holistic approach to development that entails material, ethical, as well as spiritual development (Radhakrishnan, 1927). These values are reflected in Panch Parivartan that promotes civic duty and morality as foundational elements of societal development. This aligns with ethical leadership and responsible citizenship in addressing global challenges such as inequality and environmental degradation (UNDP, 2020).

Environmental sustainability and indigenous practices

Sustainable development based on ecological awareness requires preserving the environment and ecological consciousness. Indigenous communities have long practiced environmentally sustainable lifestyles, emphasizing harmony with nature (Gadgil & Guha,2013). Panch Parivartan's focus on environmental protection reflects this tradition and aligns with global sustainability frameworks. It is also reported that when people are involved in conservation of the environment, the results are more efficient and sustainable (Ostrom, 1990). Panch Parivartan can help advance the larger agenda of sustainability in the development of the environment by promoting shared accountability (Dey et al., 2026).

Behavioural change and social transformation

Social change is closely associated with the personal and group-level behavioural changes. Ajzen Theory of Planned Behaviour (1991) emphasize on the attitudes, norms and the perceived control as factors influencing behavioru. Panch Parivartan adopts a similar approach by targeting value internalization and behavioural change at the individual level, which subsequently translates into community-level transformation. The research on the grassroots movements in India has revealed that value-based behavioral change would have a major influence on the social outcomes, such as increased

sanitation, gender equality, and involvement of the community members (Leal Filho et al., 2022). This counters the irrelevance of Panch Parivartan as a model of behavioural as well as cultural transformation.

Research gap

Although the available literature sheds some light on the development of indigenous people, social capital, and sustainability, it is also quite evident that there is a significant gap in the scholarly research on Panch Parivartan as a universal model of changing the society. Mostly, the studies are concentrating on either a single aspect like self-reliance or environmental sustainability, without adopting them as a combined system. present study addresses this gap by offering a holistic analysis of Panch Parivartan and its implications for societal well-being.

Conceptual framework: Panch parivartan

Panch Parivartan is a culturally enabled model of transformation in the society founded on five integrated dimensions; Samajik Samrasta (social harmony), Kutumb Prabodhan (family value enlightenment), Paryavaran Sanrakshan (environmental responsibility), Swadeshi (self-reliance) and Kartavya Bodh (civic duties). Collectively, these dimensions encourage the value-based existence and the common good (NITI Aayog, 2019; Government of India, 2024). These elements are linked, and they support each other. Kutumb Prabodhan occupies a foundational position, as it serves as the primary source from which other values emerge and are transmitted. (Grusec and Hastings, 2018). The values that relate to social harmony and being a good citizen are found in the family and spread to society. By putting the emphasis on Kutumb Prabodhan, it becomes possible to see the role of micro-level socialization of values in social impacts at the larger scale. Because the other dimensions will be based on internalised values, it will be necessary to reinforce systems of values based on the family. The family value enlightenment is the pillar of Panch Parivartan (Dumont, 1980). In this context, Kutumb Prabodhan emphasizes the contribution of the family as an initial institution of values formation. Families are not just individual entities and are a source of social cohesion since they help in the development of ethical behaviour, responsibility, and collective consciousness. Panch Parivartan aims to alter the impact of the whole society by reinforcing family principles in a bottom-up strategy.

Family as a unit of value socialization

The family constitutes the primary and most influential context in which individuals learn social norms, behavioural patterns, and value systems. It is within the family that foundational values such as cooperation, respect, responsibility, and empathy are cultivated through everyday interactions, parental guidance, and shared experiences (Grusec and Hastings, 2018). The family is a non-formal, continuous environment where an individual observes, imitates, and participates. Children pay close attention to

how the family shares resources, makes decisions, resolves conflicts, and interpersonal relationships, and slowly learn to internalize them as a normative behaviour. These initial experiences of socialization are essential in the individual development of their perception of social roles and duties and ethical behavior. In the Indian sociological perspective, the family element is given much importance as it passes cultural values, moral and collective consciousness to the new generation (Dumont, 1980). People brought up in family systems that emphasize values tend to become prosocial and more socially responsible and therefore, positively impact society. The family is not just a unit but an institution which makes people ready to maintain social harmony and cohesion.

The traditional joint family system has been an important value transmission across generations, as seen in the Indian context. The family elders are the custodians of the cultural norms, moral values and help the younger members of the family by providing lived experiences and daily practices. Practices like making decisions together in families, respect towards older people, and collective duties support the principles of collaboration and responsibility. The festivals like Diwali, Holi and Raksha Bandhan provide the cultural platform through which values of togetherness, mutual respect and family bonding is perpetuated. These practices illustrate how the Indian family setups serve as the dynamic spaces of value socialization beyond the formal teaching.

It is important in Himachal Pradesh (rural and other tribal areas like Kinnaur, Chamba, and Lahaul-Spiti) where traditional family setups are essential in passing on the cultural values to the new generations. The idea that families value the elders, collective responsibility, and unity with nature forms part of normal lives. Cooperation and interdependence are strengthened through practices like shared agricultural labour (juaru) where family members and other village people collectively do work on the farm and in managing orchards. The home customs and practices like seasonal festivals and village deity worship (dev parampara) can be viewed as an excellent route of instilling discipline, respect and community oriented values among the younger members. (Kjellberg & Jansson, 2022).

Social cohesion and family values

Social cohesion is the existing trust, shared values, mutual respect and the sense of belonging in the society members (Jenson, 2010). Value systems in families are directly and greatly involved in enhancing these components through cultivating cooperation, empathy, and shared responsibility in people. Whenever such values as accountability and respect become embedded into people within the family, they will tend to portray behaviours that can enhance interpersonal relationships as well as community ties. The family therefore plays a very important role as an interface between the development of individuals and their social integration. It is a mediating body that converts the values possessed by an individual into those behaviours that are socially acceptable and contribute towards cohesiveness and community welfare. This mutual enrichment goes a step further in the Panch Parivartan approach that stresses Kutumb Prabodhan (family value enlightenment) as a way of nurturing responsible and value-driven citizens. The family value systems help in the establishment of cohesive

societies built on trust and social harmony to foster ethical behaviour and common norms (OECD, 2011).

Indian Context

The Indian society offers a number of examples of how family-based values would serve to achieve social cohesion on a community level. The culture of seva (selfless service) is a well-spread practice in both religious and social settings that promotes a first consideration of the collective good instead of personal benefits. Equality, inclusiveness, and common responsibility in community practice, like langar in Hindu and Sikh traditions, create a strong sense of belonging and togetherness. The extended family values into larger social relations are manifested by the existence of local community networks in rural Bharat, where families help one another when engaging in agriculture, marriage, and crisis. These illustrations underline the fact that the values that have been cultivated in families promote integrated and harmonious social systems.

Himachal Pradesh Context

The family values, which are extended to the community life, are highly evident in Himachal Pradesh in terms of the traditions of mutual support and collective involvement. Local communities in villages usually unite on such occasions as festivals such as Kullu Dussehra or domestic fairs (melas), where families actively share cultural activities and enhance relationships of faith and belonging. Shramdaan (voluntary labour) in the countryside, including the construction of roads, upkeep of temples, or the community infrastructure, is an example of the internalization of such family values as cooperation and collective responsibility. A close kinship system guarantees social support on occasions of life like marriage, sickness, and crisis, thus boosting social cohesion at the community level.

Challenges to family value enlightenment

Although it plays a vital role, value transfer in families is a problem in modern society. The emergence of individualism and consumerism has turned the social concern over the welfare of the community into individual success and material prosperity (Beck and Beck-Gernsheim, 2002). This change tends to undermine the focus on collective values and community-based behaviour. The shifting family formations, especially the growth in the number of nuclear families, have interfered with the traditional intergenerational learning procedures. The lack of contact between the generations also restricts the passing of cultural knowledge, moral values, and the experiences of what life used to be like in a family. Rapid urbanization and globalization have only added to this change in the Indian context, changing the traditional value systems and social relationships (Mukherjee, 2020). Influence of digital media and the global consumer culture dominant culture encourages individualistic and materialistic living, which

is usually in contrast with socialization on the basis of values. All these act to slowly dilute the family-centered values, hence weakening the principles of social cohesion.

Solutions and way forward

To manage these issues, there would be the need to be mindful to make more efforts to bring about family-based systems of value that are multi-dimensional in terms of intervention. Education based on values could be instrumental in enhancing the ethical behaviour, empathy and social responsibility of the younger generations. Educational institutions should include both moral and civic education in their education programs as an addition to family socialization (Government of India, 2020). The other community involvement programs may support value transmission, as well as enable people to learn communally where they can share cultures and interact with each other across generations. It is through these platforms that the families are able to share experiences and strengthen mutual values thereby satisfying the social bonds. Systems of cultural values that once had their native models, such as Panch Parivartan can be revived through awareness campaigns so that their usefulness and applicability to the contemporary society are demonstrated. Value transmission can be ensured through instilling family values in the broader social and institutional context. The partnership of families, schools, and community groups is the best in helping in the development of cohesive and value-driven communities. Through these strategies, one can revert to the traditional position of the family in the development of socially responsible citizens and enhance social cohesion.

Discussion

The discussion reveals that social cohesion is firmly embedded in the value systems at a micro-level that are formed in the family. Social harmony does not come as the imposition of some external policies or institutional set-ups but the outcome of the daily practices, interactions and value orientations built within the family context. Panch Parivartan is an effective culturally competent and holistic model that has been successful in integrating individual behaviour with the social implications. The framework provides a feasible opportunity to tackle the current social problems of fragmentation, lack of trust, and crumbling bonds in society through the importance of enlightenment of family values. It does not prioritize outside control but rather encourages a deeper-rooted and more significant social change through internal value creation. This philosophy emphasizes on the need to foster inherent values in individuals, which will bring about responsible citizenship and collective welfare.

Future research directions

The conceptual research may be supported by subsequent research to measure the relationship between the family value enlightenment and social cohesion in the various socio-cultural settings in India empirically. The quantitative and mixed-method study is capable of assisting in justification of the impact of family-based socialization towards citizenship behaviour, trust, and interest in the

community. Important research may be conducted on the variations between regions and demographics i.e. rural and urban, and the impact that the change in the family structure has on the transmission of values. One can also enquire about how educational institutions and community-based organizations can reinforce family-based values and informational socialization techniques. future research can examine the effects of digital media and globalization on families, especially in the young generations. It would be possible to understand how contemporary forces transform the traditional value transmission to develop more effective interventions. The interdisciplinary research based on sociology, psychology, and cultural studies can further help to reinforce the theoretical and practical importance of Panch Parivartan as a theoretical framework to discuss the issues of social cohesion in modern societies.

Conclusion

This paper has examined the role of family value enlightenment as a foundational pillar in fostering social cohesion within the Panch Parivartan framework. It has been demonstrated that families serve as primary agents of value transmission, shaping behaviours that contribute to societal harmony. The value systems rooted in families are vital in regaining trust, common norms, and belonging. With its focus on family enlightenment, Panch Parivartan presents a valuable channel for raising value-driven and coherent societies.

Implications of the study

The results of the given research have significant theoretical and practical consequences. Theoretically, the paper will add to the current literature by incorporating the idea of family value enlightenment in the context of Panch Parivartan in explaining social cohesion in a culturally based approach. It takes a macro-based policy strategy down to a micro-based value development in families, thus providing a more comprehensive picture of harmony in society. In real life, the study identifies the necessity of reinforcing family-centred value systems as a tool of promoting responsible citizenship and a harmonious living. It indicates that schools ought to teach value-based learning that could supplement the family socialization processes. The community organizations and civil society can take a big part in the advancement of collective values by way of awareness programs and cultural programs. Policymakers might seek to incorporate indigenous models like Panch Parivartan into the social development programs to strengthen the value-based social change. The presented research highlights the necessity of rejuvenating family institutions and systems of value transmissions in order to deal with modern-day issues pertaining to social interaction.

Limitations of the study

The study is conceptual in nature and relies primarily on secondary sources, which limits its ability to provide empirical validation of the proposed relationships between family value enlightenment and

social cohesion. The absence of primary data restricts the generalizability of the findings across different socio-cultural contexts. The study focuses largely on the Indian context and culturally-based frameworks like Panch Parivartan, which may limit its applicability to other cultural settings. The dynamic nature of family structures and societal changes has also not been empirically examined in this study. The limitation of future studies applying quantitative or mixed-method methodologies can help to overcome these limitations and give a more in-depth insight into the topic.

References

Ajzen, I. (1991). The theory of planned behavior. *Organizational behavior and human decision processes*, *50*(2), 179-211.

Beck, U., & Beck-Gernsheim, E. (2001). Individualization: Institutionalized individualism and its social and political consequences.

De Souza Briggs, X. (2005). Social capital and segregation in the United States. *Desegregating the city: Ghettos, enclave, and inequality*, 79-107.

Deininger, K., & Liu, Y. (2013). Economic and social impacts of an innovative self-help group model in India. *World Development, 43*, 149–163. https://doi.org/10.1016/j.worlddev.2012.09.019

Dey, N., Pandey, A., & Verma, S. (2026). *Panch parivartan through the family lens: Citizenship values and swadeshi as foundations of sustainable development*. Paper presented at the Panch Parivartan and Bharat of the Future Conference, DAV College, Varanasi, Uttar Pradesh, India.

Dumont, L. (1980). *Homo hierarchicus: The caste system and its implications*. University of Chicago Press.Esteva, G., & Prakash, M. S. (2014). *Grassroots post-modernism: Remaking the soil of cultures*. Zed Books.

Gadgil, M., & Guha, R. (2013). *Ecology and equity: The use and abuse of nature in contemporary India*. Routledge.

Gasper, D. (2020). Amartya Sen, social theorizing and contemporary India. *ISS Working Paper Series/General Series*, *658*.

Giddens, A. (2023). Modernity and self-identity. In *Social theory re-wired* (pp. 477-484). Routledge.

Government of India. (2020). National Education Policy 2020. *Ministry of Education.*

Government of India. (2024). Value-based citizenship and responsible social behaviour. *Ministry of Education.*

Grusec, J. E., & Hastings, P. D. (Eds.). (2014). *Handbook of socialization: Theory and research*. Guilford Publications.

Jenson, J. (2010). *Defining and measuring social cohesion* (No. 1). Commonwealth Secretariat.

Kjellberg, I., & Jansson, B. (2022). The capability approach in social work research: A scoping review of research addressing practical social work. *International Social Work*, *65*(2), 224-239.

Leal Filho, W., Levesque, V., Sivapalan, S., Salvia, A. L., Fritzen, B., Deckert, R., ... & Shiel, C. (2022). Social values and sustainable development: community experiences. *Environmental Sciences Europe*, *34*(1), 67.

NITI Aayog. (2019). Strategy for New India @75. Government of India. https://www.niti.gov.in

OECD. (2011). *Perspectives on Global Development: Social Cohesion*. OECD Publishing. https://doi.org/10.1787/persp_glob_dev-2012-en

Radhakrishnan, S. (1927). *The Hindu view of life: Upton lectures delivered at Manchester College, Oxford, 1926*. G. Allen & Unwin, Limited

Sharma, S. (2024). Cultural Diversity and Multiculturalism in India and Europe. In *Culture Change in India* (pp. 311-332). Routledge India.

UNDP (2020). *Human development report 2020*. United Nations Development Programme.

United Nations (2015). *Transforming our world: The 2030 agenda for sustainable development*.

■■■

Folk Elements in Indian Painting: An Analytical Study

Dr. Kshama Divedi
Assistant Professor
Visual Art, School of Culture and Creative Expressions
Dr. Bhim Rao Ambedkar University

Introduction

India is a land of diverse regions, each possessing a distinctive cultural identity shaped by food habits, lifestyle, customs, attire, rituals, and everyday practices. These features collectively produce a recognizable regional character. Among the many cultural expressions through which a region may be understood, folk art occupies a particularly significant place because it communicates lived experience, collective memory, ritual belief, and social imagination through visual forms. Indian painting has long held a distinct position within the broader history of art and culture. The folk paintings of different regions are vivid, direct, and deeply rooted in tradition. They preserve the essence of the past while continuing to speak to the present. These traditions, transmitted across generations, embody shared memories, beliefs, rituals, and community practices. In contemporary Indian painting, the use of folk elements appears naturally and meaningfully, indicating a continued engagement with cultural heritage and regional visual traditions (Garola, n.d.; Jagtap, 2019).

Folk elements in painting are highly expressive and communicative. They are primarily visible through symbolic forms, simplified figures, rhythmic lines, and vibrant colors. Traditional folk artworks created on walls, floors, textiles, ritual spaces, and other surfaces reveal a wide variety of shapes, forms, and color schemes. These visual features constitute what may be understood as folk elements. Several of these elements have continued from ancient times to the contemporary period, retaining their symbolic force even when their contexts of use have changed.

In contemporary painting practices, many artists consciously incorporate folk elements and draw inspiration from traditional visual vocabularies. Under the broader category of folk elements, form and color remain central because they serve as essential tools of expression and cultural continuity. Through their continued use, folk elements maintain their relevance and vitality within the evolving landscape of Indian art.

Methodological Orientation

This article follows an analytical and interpretative approach. It examines selected folk motifs and visual elements in Indian painting by focusing on their form, symbolic meaning, cultural location, and continuity across time. The discussion is organized thematically around important folk forms such as

the Swastika, Naga, Sun, fish, Moon, animals, birds, folk deities, and color composition. The purpose is not merely to list these elements but to understand how they function as meaningful visual signs within Indian folk and contemporary art.

Folk Elements in Indian Art: Form, Symbol, and Meaning

Among the various folk elements found in Indian art, symbolic forms hold a central place. These forms are not merely decorative devices; they are deeply rooted in cultural beliefs, ritual practices, religious imagination, and philosophical thought. A folk symbol may communicate auspiciousness, fertility, protection, devotion, cosmic order, ecological harmony, or social continuity. Therefore, folk elements must be understood as visual expressions of both aesthetic sensibility and cultural meaning.

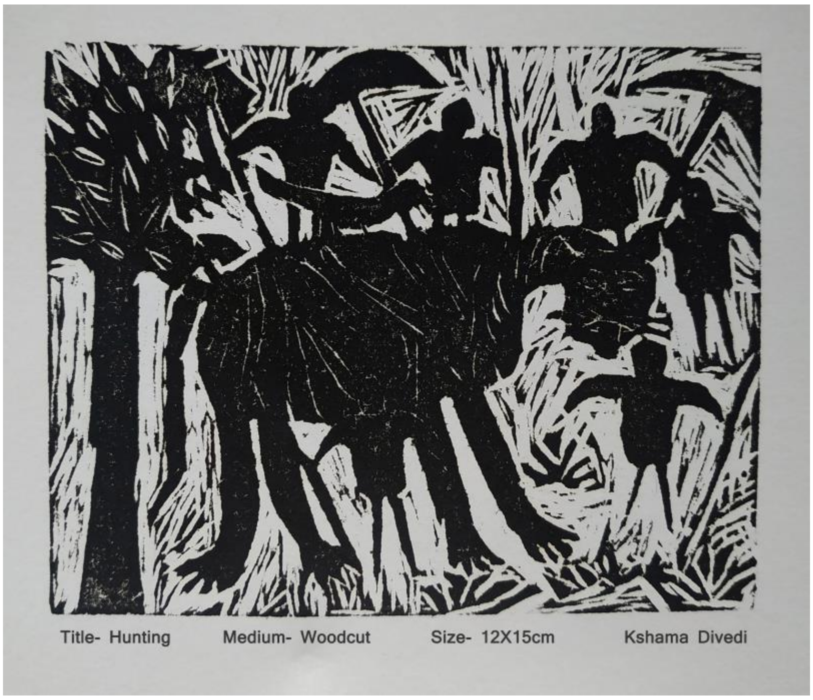

Figure 1. A folk-inspired visual composition showing the expressive use of line, form, and regional visual memory.

Swastika

The Swastika is one of the most significant auspicious symbols in Indian visual tradition. It represents well-being, prosperity, harmony, and the continuity of life. In Indian thought, the Swastika has been associated with cosmic balance and auspicious beginnings. It is traditionally drawn or inscribed before the commencement of important religious, domestic, and social activities. In this sense, the symbol functions not only as a visual form but also as a sacred sign of affirmation and welfare.

The significance of the Swastika may also be understood in relation to Vedic and philosophical conceptions of space, time, movement, and cosmic order. The rotating form suggests dynamism and continuity, while its central point may be interpreted as a sustaining axis. Archaeological evidence indicates that Swastika-like forms appeared in the visual culture of the Indus Valley Civilization, and

later examples are visible in seals, ornamental designs, stone slabs, and painted panels (Agrawal, n.d.; Srivastava, 2002).

In Indian painting, the Swastika has retained its symbolic value from ancient times to the present. It appears in ritual drawings, door decorations, floor designs, folk paintings, and contemporary compositions. Its continued presence shows that folk motifs are capable of preserving their original cultural meaning while adjusting to new artistic settings. As a pictorial element, the Swastika signifies auspiciousness, balance, purity, prosperity, and cultural continuity.

Figure 2. Swastika motif as an auspicious symbolic form in Indian visual tradition.

Naga (Serpent)

The Naga, or serpent, occupies a sacred and powerful position in Indian art and religious imagination. Evidence of serpent worship can be traced to early Indian civilization, where serpent motifs appeared on pottery, seals, sculptures, and other material remains. In Indian religious traditions, the Naga is often associated with protection, fertility, hidden energy, water, earth, and cosmic depth. References to Naga worship in the Puranic tradition further indicate its long-standing presence in Indian cultural life (Srivastava, 2008).

In Buddhist art, Naga figures are prominently represented at sites such as Sanchi and Bharhut, where they function as protectors and symbolic guardians. In Jain visual tradition, the significance of the Naga is seen in the depiction of Nagaraja Dharanendra and Naga Rani Padmavati, who are associated with the protection of the twenty-third Tirthankara, Parshvanatha. In the Vaishnava tradition, the Kaliya Mardana episode of Lord Krishna presents the serpent as a symbol of chaos subdued by divine power.

Naga worship continues in many regions of India. The festival of Naga Panchami is observed with ritual devotion, and in several parts of North India, Naga figures are drawn on entrances using turmeric and vermilion. Such practices reflect protection, auspiciousness, and cultural continuity. In Indian painting, the Naga remains a meaningful visual element, symbolizing preservation, guardianship, vitality, and the continuity of tradition.

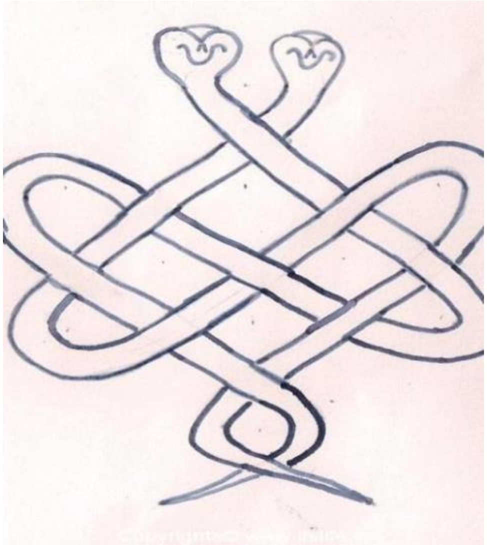

Figure 3. Interlacing serpent forms representing the Naga motif in folk visual language.

Surya (Sun)

The Sun occupies a vital position in Indian civilization and visual culture. It is regarded as a luminous force that brings light, energy, movement, and vitality to human life. In folk art, the Sun is often represented in a simple and direct form, frequently as a circular shape with radiating lines or expressive facial features. This simplicity allows the motif to communicate immediately and effectively.

The Sun appears widely in rangoli, wall paintings, ritual diagrams, and folk pictorial compositions. During several religious practices, including domestic ritual observances, solar forms are drawn with natural materials such as rice flour. In Vedic thought, the Sun is associated with Savita, energy, motion, and divine order. The horse and the wheel are also connected with solar symbolism, representing movement, time, and cosmic rhythm (Saxena, 1986).

In contemporary Indian painting, the Sun continues to be used as a central motif by many artists. It is explored not only as a natural phenomenon but also as a cultural and symbolic element. Its presence in modern painting demonstrates how a folk symbol can travel across historical periods while retaining its expressive and philosophical depth.

Figure 4. Sun motif in a folk pictorial composition, reflecting energy, rhythm, and ritual symbolism.

Fish (Matsya)

The fish occupies a distinct place among Indian folk elements. Fish motifs are visible across many regional folk traditions, including Kalamkari, Odisha Pattachitra, and Mithila or Madhubani painting. The depiction of fish in simplified folk form can be traced to early Indian visual culture, including Harappan and Mohenjo-daro traditions, which indicates the antiquity of this motif in Indian art.

In Indian thought, the fish is considered auspicious. Its dependence on water has often been interpreted symbolically as an expression of devotion, inseparability, and unconditional love. The fish may also be associated with the human soul, fertility, prosperity, and divine manifestation. In some contexts, the fish functions as a decorative element; in others, it acquires sacred meaning through its association with Lord Vishnu in the Matsya form.

Fish motifs are widely used in rangoli designs, wall paintings, and traditional pictorial compositions. Their repeated use shows how folk art transforms natural forms into cultural signs. In contemporary art as well, fish imagery continues to offer a rich symbolic vocabulary for expressing life, movement, abundance, and spiritual association.

Figure 5. Fish motif as an auspicious and decorative form in folk painting.

Moon (Chandrama)

Just as the Sun holds an important place in pictorial representation, the Moon also occupies a significant position among folk forms. It is regarded as a symbol of light in darkness, the passage of time, beauty, tenderness, and aesthetic grace. Expressions such as moonlit night and moon-like face reveal the cultural intimacy of lunar imagery in Indian imagination.

One of the remarkable features of folk art is the natural and spontaneous expression of such themes. The Moon appears in ritual designs, wall paintings, folk compositions, and abstract visual explorations. Contemporary artists have also employed lunar imagery with sensitivity and elegance. Artists such as Jyoti Bhatt frequently incorporated the Sun and the Moon as recurring motifs, while the works of Laxman Pai and M. F. Husain also reveal the expressive presence of celestial forms.

If the Sun represents light during the day, the Moon signifies illumination at night. Together, they create a balanced cosmic rhythm in visual culture. Their recurrence in folk and contemporary painting demonstrates how celestial motifs bridge natural observation, ritual practice, and symbolic imagination.

Figure 6. Sun and Moon motifs in a ritual pictorial setting, showing the connection between celestial imagery and folk expression.

Animals and Birds

Indian folk art naturally incorporates a wide range of animal and bird forms. These motifs are often drawn from everyday surroundings and are represented with simplicity, rhythm, and expressive power. The horse, as seen in Pithora painting, symbolizes speed, movement, and heroic energy. The elephant, frequently depicted in Kalamkari and other traditions, represents prosperity, strength, and auspiciousness. The bull is associated with fertility, agriculture, and abundance, while the peacock signifies beauty, color, and the vibrancy of life.

Birds are also important elements in folk visual language. Small birds, often seen in village surroundings, become symbols of freedom, life, prosperity, and movement. Such motifs do not appear as isolated naturalistic studies; instead, they are integrated into larger visual narratives. Artists such as Haku Shah have used animal and bird forms in ways that reveal the organic relationship between folk life, nature, and visual expression.

Figure 7. Animal motifs in folk painting, emphasizing rhythm, vitality, and symbolic form.

Folk Deities

Religion and ritual practice have played a major role in the development of Indian painting. When folk elements are discussed in relation to meaning, attention naturally moves toward religious festivals,

domestic rituals, village worship, and community observances. In Indian folk traditions, deities are often represented in localized forms and are known by different names across regions. Many of them are worshipped as clan deities, village protectors, or guardians of specific communities.

Examples of such folk deities include Sir Katti Mai, Ghadi Devi, Pithora Baba, Sonar, Dhobain, Godhan Devta, tree deities, and Bagad Dev. Alongside these local forms, the depiction of Hindu gods and goddesses remains central to folk and traditional painting. Deities such as Rama, Krishna, Sita, Durga, Kali, Lakshmi, Nath Ji, the Saptamatrikas, Surya Dev, and Chandra Dev are frequently represented in folk styles. These images reveal how folk art negotiates between local devotion and broader religious traditions.

Color Composition in Folk Painting

Indian painting reflects the fragrance of its soil, the vitality of its culture, and the visual richness of folk life. In folk art, everyday objects are simplified into expressive forms, and colors are often derived from locally available natural sources such as plants, minerals, earth pigments, soot, and other organic materials. This relationship between material, environment, and visual expression gives folk painting a distinctive cultural character.

Folk paintings generally employ simple, bright, and primary colors. Commonly used pigments include khadiya or white, kajal or black, geru or red, harital or yellow, and lajwardi or blue. These colors appear consistently across several traditions and create a shared visual identity. Among them, white and red are especially widespread. Natural substances such as cow dung and earth-based materials have also been used in the preparation of painting surfaces and pigments (Joshi, n.d.).

In folk art, colors are usually applied in flat areas without the academic use of light, shade, or perspective. Despite this apparent simplicity, their communicative force remains strong. The colors are decorative, vibrant, and visually striking, making them suitable for floors, walls, textiles, ritual surfaces, and domestic spaces. Because folk imagery predates written language in many contexts, color functions as a powerful symbolic language.

The symbolic meaning of color is also significant. Yellow conveys joy, sunlight, illumination, and divinity. Red expresses attraction, energy, activity, passion, and intensity. White signifies purity, peace, cleanliness, and radiance. Black is often associated with sorrow, negativity, or protective force, depending on the context. With changing times, the use of color has also evolved. Earlier, colors were largely prepared from natural sources, whereas contemporary art increasingly employs ready-made pigments and secondary colors. Even so, contemporary Indian painting continues to draw extensively from the folk color vocabulary. This influence can be observed in the works of artists such as K. C. Paniker and K. G. Subramanyan, who incorporated vibrant folk colors and simplified forms into their artistic practices (Jagtap, 2019).

Folk Elements and Contemporary Indian Painting

The continued presence of folk elements in contemporary Indian painting reveals that tradition is not static. Rather, it is reinterpreted, reorganized, and renewed through changing artistic practices. Contemporary artists often return to folk forms not as a matter of imitation but as a method of recovering cultural memory, regional identity, and symbolic depth. This process creates a dialogue between the inherited visual vocabulary of folk traditions and the experimental language of modern art.

Folk elements provide contemporary artists with a rich storehouse of forms, colors, signs, and narratives. Motifs such as the Sun, Moon, serpent, fish, animal figures, ritual symbols, and folk deities enable artists to explore themes of nature, spirituality, social life, memory, and cultural belonging. Their use in contemporary painting also challenges the rigid division between so-called classical, folk, and modern traditions. Instead, it demonstrates that Indian art has always been shaped by continuous exchange between multiple visual worlds.

In this sense, folk elements are not remnants of the past; they are active components of artistic expression. They allow contemporary Indian painting to remain connected with local knowledge, ritual practice, ecological sensitivity, and community experience while also engaging with modern form and technique. The vitality of these elements lies in their capacity to preserve continuity within change.

Conclusion

This article highlights that folk elements form a foundational strength of Indian art and visual culture. Rooted in regional traditions, everyday life, ritual practice, and collective belief systems, these elements reflect the deep cultural consciousness of Indian society. Symbols such as the Swastika, Naga, Sun, Moon, fish, animals, birds, folk deities, and indigenous colors demonstrate how folk art communicates complex ideas through simple, direct, and expressive visual forms.

From prehistoric times to the contemporary period, folk elements have maintained their relevance by adapting to changing artistic contexts while preserving their symbolic meanings. Their continued presence in contemporary Indian painting shows that modern artists do not detach themselves from tradition; rather, they reinterpret tradition creatively. The simplicity of forms, symbolic imagery, and vibrant color schemes derived from nature make folk art highly communicative and culturally grounded.

Folk elements therefore act as a vital link between tradition and modern expression in Indian art. They preserve cultural identity, enrich contemporary artistic practices, and sustain continuity within change. Indian folk art should thus be understood not merely as a reflection of the past but as an active and meaningful component of contemporary Indian painting.

References

Agrawal, P. K. (2002). Ancient Indian art and architecture (1st ed.).

Agrawal, V. S. (n.d.). Indian art (1st ed.). Varanasi: Prithvi Prakashan.

Dwivedi, R. N. (n.d.). Cultural history of Wanpur, Bundelkhand and its surroundings. Wanpur: Vividha Publication.

Garola, V. (n.d.). Indian painting (1st ed.). Allahabad: Limishra Prakashan Pvt. Ltd.

Jagtap, J. (2019). Modern Indian painting (1st ed.). Pune: Jagtap Publishing House.

Joshi, I. N. (n.d.). Folk painting of Malwa (1st ed.). Vishva Bharati Publication.

Mishra, V. N. (2015). Anvaya aur samanvaya: Folk and classical traditions (1st ed.). New Delhi: Vani Prakashan.

Pratap, R. (n.d.). Indian painting and sculpture (1st ed.). Rajasthan Hindi Granth Academy.

Saxena, B. L. (n.d.). Saran Sudha: Art theory and tradition (4th ed.). Lucknow: Anand Publishers.

Saxena, S. B. L. (1986). Art theory and tradition (Saran Sudha) (1st ed.).

Srivastava, R. N. (2008). Naga worship in Indian art (1st ed.).

Srivastava, V. M. (2002). Auspicious symbols in ancient Indian art (1st ed.). Varanasi: Vishwavidyalaya Prakashan.

Vajpayee, S. K. (1992). An aesthetic study of Gupta period sculpture (1st ed.). New Delhi: Eastern Book Linkers.

■■■

सामाजिक समरसता की स्थापना में आगत चुनौतियाँ एवं समाधान : हमारी सांस्कृतिक विरासत के परिप्रेक्ष्य में

डॉ. राकेश कुमार गोरा
सहायक आचार्य
राजकीय महाविद्यालय, रायपुर
भीलवाड़ा राजस्थान

प्रस्तावना

भारत प्राचीन काल से ही विविधताओं से भरा देश रहा है। यहाँ विविध धर्म, भाषाएँ, जातियाँ, जीवन शैली एवं परम्पराएँ पाई जाती हैं। इन सभी विविधताओं के बावजूद भारतीय समाज में एकता की भावना सर्वदा विद्यमान रही है। भारतीय संस्कृति ने हमेशा समन्वय, सहिष्णुता एवं समरसता को महत्व दिया है।

सामाजिक समरसता का तात्पर्य समाज के विभिन्न वर्गों के बीच आपसी सम्मान, सहयोग एवं समानता की भावना का विकास से है। जब समाज में रहने वाले सभी व्यक्ति अपने मतभेदों को छोड़कर एक दूसरे के प्रति सहयोग एवं सद्भाव का आचरण करते हैं, तब सामाजिक समरसता की स्थापना होती है।

भारतीय सांस्कृतिक परम्परा में समरसता का विचार अत्यंत प्राचीन है। वेदों, उपनिषदों, पुराणों एवं संत साहित्य में मानवता, समानता एवं करुणा की भावना को सर्वोच्च स्थान दिया गया है। उदाहरण के लिए— "वसुधैव कुटुम्बकम्"[1] – सम्पूर्ण विश्व को एक परिवार मानने की भावना। "सर्वे भवन्तु सुखिनः"[2] – सभी के सुख और कल्याण की कामना।

इन उच्च आदर्शों के बावजूद वर्तमान समय में सामाजिक समरसता अनेक चुनौतियों का सामना कर रही है।

सामाजिक समरसता की अवधारणा

सामाजिक समरसता का अर्थ समाज के समस्त समुदायों एवं वर्गों के बीच समानता, सौहार्द, समता, सम्मान एवं सहयोग की भावना से है। यह केवल सामाजिक समानता तक सीमित नहीं है, बल्कि मानसिक और सांस्कृतिक एकता का भी परिचायक है। इसे शब्दांतर में सामाजिक एकरसता भी कहा जा सकता है। यह एक ऐसा सामाजिक वातावरण है जिसमें जाति, धर्म, भाषा और वर्ग के भेदभाव के बिना सभी लोग मिल-जुलकर रहते हैं। सामाजिक समरसता समाज में शांति और स्थिरता बनाए रखने का महत्वपूर्ण आधार है। जब समाज में समरसता होती है तो परस्पर सहयोग तथा भाईचारे की भावना मजबूत होती है। सामाजिक समरसता का मूल आधार न्याय, समानता एवं आपसी सम्मान है। यह समाज के समस्त समूहों के बीच विश्वास एवं एकता को बढ़ावा देती है। समरसता की भावना से सामाजिक संघर्ष के साथ-साथ भेदभाव को कम किया जा सकता है। समरस समाज में समान अवसरों का विस्तार होता है। यह लोकतांत्रिक मूल्यों एवं सामाजिक न्याय को सुदृढ़ बनाती है। समरस समाज में सभी व्यक्ति अपने अधिकारों एवं कर्तव्यों के

प्रति जागरूक होते हैं। सामाजिक समरसता राष्ट्र की एकता एवं अखंडता को मजबूत करती है। इसलिए समाज के प्रत्येक व्यक्ति को समरसता की भावना को अपनाकर समाज के विकास में योगदान देना चाहिए।

सामाजिक समरसता के मुख्य तत्व निम्नलिखित हैं—

- समानता की भावना
- पारस्परिक सम्मान
- सहिष्णुता
- सहयोग और सहअस्तित्व
- सामाजिक न्याय

जब ये समस्त तत्व समाज में यथोचित रूप में विकसित होते हैं तब समाज में शांति, स्थिरता एवं विकास संभव होता है।

भारतीय सांस्कृतिक विरासत और सामाजिक समरसता

भारतीय संस्कृति का आधार ही समरसता एवं सहअस्तित्व है। प्राचीन भारतीय समाज में विभिन्न मत-मतान्तरों एवं परम्पराओं के बावजूद सर्वदा सामंजस्य बना रहा। भारत की सांस्कृतिक विरासत अत्यंत प्राचीन होने के साथ-साथ समृद्ध एवं विविधतापूर्ण है। यहाँ अनेक धर्मों, भाषाओं, रीति-रिवाजों, परंपराओं एवं जीवन मूल्यों का सुन्दर संगम देखने को मिलता है। भारतीय संत-महात्माओं, समाज सुधारकों एवं आध्यात्मिक परंपराओं ने सर्वदा जाति, वर्ग एवं धर्म के भेदभाव से ऊपर उठकर मानवता को प्राथमिकता देने का संदेश दिया है। भक्ति आंदोलन, सूफी परंपरा एवं विभिन्न लोक परंपराओं ने समाज में समानता के साथ-साथ भाईचारे की भावना को सशक्त किया।

मेलों, त्योहारों, लोककला, संगीत, नृत्य एवं सामूहिक परंपराओं के माध्यम से भारतीय समाज में परस्पर जुड़ाव एवं समरसता का वातावरण तैयार होता है। ये सांस्कृतिक अभिव्यक्तियाँ समाज के विभिन्न वर्गों को एक सूत्र में बाँधने का कार्य करती हैं।

इस प्रकार हमारी सांस्कृतिक विरासत केवल ऐतिहासिक धरोहर ही नहीं है, बल्कि राष्ट्रीय एकता, सामाजिक समरसता एवं मानवीय मूल्यों को सुदृढ़ करने का महत्वपूर्ण माध्यम भी है। आज के कलुषित समय में इन सांस्कृतिक आदर्शों को अपनाकर समाज में सामंजस्य एवं समावेशिता को और अधिक सुदृढ़ बनाया जा सकता है।

वेद और उपनिषदों की शिक्षाएँ

वेदों में मानवता, सहयोग और एकता की भावना पर विशेष बल दिया गया है। भारतीय वेद एवं उपनिषद मानव जीवन को एकता, नैतिकता एवं समरसता के मार्ग पर चलने की सद्प्रेरणा देते हैं। इनमें समाज के समस्त लोगों के मध्य सहयोग, समानता, प्रेम एवं परस्पर सम्मान की भावना को विकसित करने पर बल दिया गया है। यथा—

(क) एकता और सामूहिकता की भावना

ऋग्वेद में कहा गया है— "संगच्छध्वं संवदध्वं सं वो मनांसि जानताम्"[3] अर्थात् हम मिलकर चलें, मिलकर बोलें एवं अपने विचारों को एक करें। यह समाज में एकता के साथ-साथ सहयोग की भावना को बढ़ाने की शिक्षा देता है।

(ख) समस्त मानवता को एक परिवार मानना

उपनिषदों में "वसुधैव कुटुम्बकम्"[4] की भावना व्यक्त की गई है, जिसका अर्थ है कि सम्पूर्ण विश्व एक ही परिवार है। यह विचार धर्म, जाति एवं वर्ग के भेद से ऊपर उठकर सर्वसाधारण को समान मानने की प्रेरणा देता है।

(ग) सभी के सुख एवं कल्याण की कामना

वेदों और उपनिषदों में "सर्वे भवन्तु सुखिनः, सर्वे सन्तु निरामयाः"[5] की भावना अभिव्यक्त की गई है, जिसका अर्थ है कि सभी लोग सुखी हों एवं सबका कल्याण हो। यह सामाजिक समरसता का मूल आधार है।

(घ) पारस्परिक सम्मान एवं सहिष्णुता

वेदों में विभिन्न विचारों और मार्गों के प्रति सम्मान रखने की शिक्षा दी गई है। "एकं सद्विप्रा बहुधा वदन्ति"[6] का अर्थ है कि सत्य एक है, परंतु विज्ञजन उसे अनेक रूपों में व्यक्त करते हैं। इससे सहिष्णुता एवं विचारों की विविधता को स्वीकार करने की प्रेरणा मिलती है।

(ङ) समानता एवं न्याय का भाव

उपनिषदों में सभी मनुष्यों में एक ही परमात्म तत्व का वास बताया गया है। जब सभी में एक ही आत्मा है तो किसी के साथ भेदभाव करना उचित नहीं है। यह विचार समाज में समानता और न्याय की भावना को मजबूत करता है।

(च) परोपकार एवं सेवा की भावना

वेदों में मनुष्य जीवन का लक्ष्य केवल स्वयं का हित नहीं, बल्कि दूसरों के कल्याण के लिए कार्य करना बताया गया है। दया, सेवा एवं करुणा के माध्यम से समाज में समरसता स्थापित की जा सकती है। इस प्रकार वेद एवं उपनिषद समानता, मानवता, सहिष्णुता, सहयोग एवं परोपकार जैसे मानवीय मूल्यों को बढ़ावा देकर सामाजिक समरसता की मजबूत आधारशिला प्रस्तुत करते हैं।

संत परम्परा का योगदान

भारतीय संतों और महापुरुषों ने सामाजिक समरसता को बढ़ावा देने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाई।

(क) संत कबीर

संत कबीर मध्यकालीन भारत के महान संत, कवि एवं समाज सुधारक थे। उन्होंने अपने दोहों के माध्यम से समाज में फैली ऊँच-नीच, जाति-पांति, अंधविश्वास एवं धार्मिक कट्टरता का तीव्र विरोध किया। कबीर ने मानवता, समानता एवं प्रेम को सर्वोपरि मानते हुए सभी मनुष्यों को एक समान बताया। कबीर का मानना था कि ईश्वर एक है तथा वह सभी के अंत:करण में विद्यमान है। इसलिए उन्होंने हिंदू-मुस्लिम भेदभाव को निरर्थक बताया एवं दोनों समुदायों के बीच प्रेम तथा भाईचारे का पैगाम दिया। उनके प्रसिद्ध दोहे जैसे — "जाति न पूछो साधु की, पूछ लीजिए ज्ञान"[7] समाज में समानता एवं समरसता की भावना को सम्बल प्रदान करते हैं।

संत कबीर ने बाह्य आडंबरों एवं कर्मकांडों की बजाय सदाचरण, सत्य एवं प्रेम को महत्व दिया। उन्होंने समाज के समस्त वर्गों को यह शिक्षा दी कि मानव की पहचान उसके कर्म एवं आचरण से होती है, न कि उसके धर्म या जाति से।

इस प्रकार संत कबीर द्वारा प्रदत्त शिक्षाओं ने सामाजिक भेदभाव को कम करने एवं समानता, मानवता के साथ-साथ भाईचारे की भावना को बढ़ाने में महती भूमिका निभाई। उनका संदेश आज भी सामाजिक समरसता और राष्ट्रीय एकता के लिए अत्यंत प्रासंगिक है।

(ख) गुरु नानक

गुरु नानक भारत के महान संत, आध्यात्मिक गुरु होने के साथ-साथ समाज सुधारक भी थे।

उन्होंने समझाया कि ईश्वर एक है एवं हम सभी उसी की संतान हैं, इसलिए किसी भी प्रकार का भेदभाव उचित नहीं है। उन्होंने "नाम जपो, किरत करो और वंड छको"[8] का संदेश दिया, जिसका अर्थ है ईश्वर का स्मरण करना, ईमानदारी से कार्य करना एवं अपनी कमाई को दूसरों के साथ वितरित करना। सामाजिक समरसता को बढ़ावा देने के लिए गुरु नानक देव ने लंगर प्रथा को शुरू किया, जिसमें सभी लोग बिना किसी जाति या धर्म के भेदभाव के एक साथ बैठकर भोजन करते हैं। यह व्यवस्था समानता और भाईचारे का एक उत्कृष्ट उदाहरण है।

(ग) रविदास

संत रविदास का मानना था कि सभी मनुष्य ईश्वर की संतान हैं, इसलिए किसी भी व्यक्ति के साथ जाति या जन्म के आधार पर भेदभाव करना उचित नहीं है। उन्होंने अपने पदों में यह संदेश दिया कि मनुष्य की महानता उसकी जाति से नहीं, बल्कि उसके कर्म एवं सदाचार से निर्धारित होती है। संत रविदास ने एक ऐसे आदर्श समाज की कल्पना की जिसे उन्होंने "बेगमपुरा" कहा। यह एक ऐसा समाज है जहाँ किसी प्रकार का दुःख, भेदभाव, कर या अन्याय नहीं होता और सभी लोग समानता तथा स्वतंत्रता के साथ जीवन व्यतीत करते हैं।

(घ) दादू दयाल

इनकी वाणी में सामाजिक समरसता और मानवता का स्पष्ट संदेश मिलता है। दादू दयाल की कुछ प्रसिद्ध वाणियाँ जो सामाजिक समरसता का संदेश देती हैं—

"दादू ऐसा चाहिए, जैसा सूप सुभाय।
सार-सार को गहि रहे, थोथा देई उड़ाय॥"

"दादू सब रंग रंगीले, सब ही में रंग राम।
दादू एकै आत्मा, काहे करै अभिमान॥"

"दादू बुरा जो देखन मैं चला, बुरा न मिलिया कोय।
जो दिल खोजा आपना, मुझसे बुरा न कोय॥"

"दादू प्रेम बिना सब सूना, प्रेम बिना सब शून्य।
प्रेम बिना प्रभु मिलन नहीं, चाहे कर ले पूज॥"

“दादू मानुष जन्म अमोल है, और न बारंबार।
जैसे कंचन पाविए, फिर न आवै वार॥”[9]

इस प्रकार दादू दयाल की शिक्षाएँ प्रेम, समानता, मानवता एवं सहिष्णुता पर आधारित थीं। उन्होंने समाज में जातीय एवं धार्मिक भेदभाव को समाप्त करने के साथ-साथ सामाजिक समरसता स्थापित करने में महत्वपूर्ण योगदान दिया। उनकी वाणी आज भी समाज को भाईचारे, एकता एवं समरसता की ओर प्रेरित करती है।

इन सभी संतों ने जाति, धर्म एवं सामाजिक भेदभाव का तर्कपूर्ण विरोध किया तथा मानवता को सर्वोच्च मूल्य माना।

भक्ति आंदोलन

मध्यकालीन भक्ति आंदोलन ने समाज में व्याप्त जातिगत भेदभाव को समाप्त करने का प्रयास किया। इस आंदोलन ने यह संदेश दिया कि ईश्वर के सामने सभी मानव समान हैं।

लोक संस्कृति और समरसता

भारतीय लोक संस्कृति में भी सामाजिक समरसता का भाव स्पष्ट दिखाई देता है। लोकगीत, लोकनृत्य, त्यौहार एवं मेलों के माध्यम से समाज के विभिन्न वर्गों के लोग एक साथ मिलकर एकभाव से संयुक्त होकर उत्सव मनाते हैं।

सामाजिक समरसता के समक्ष वर्तमान चुनौतियाँ

जातिगत भेदभाव

भारतीय समाज में जाति व्यवस्था ऐतिहासिक रूप से मौजूद रही है। हालांकि संविधान ने समस्त नागरिकों को समानता का अधिकार दिया है, फिर भी कई स्थानों पर जातिगत भेदभाव अभी भी मौजूद है।

आर्थिक असमानता

आर्थिक असमानता भी सामाजिक समरसता के लिए एक बड़ी चुनौती है। समाज में धन एवं संसाधनों का असमान वितरण सामाजिक तनाव को बढ़ाता है।

धार्मिक कट्टरता

धार्मिक असहिष्णुता एवं कट्टरता भी सामाजिक समरसता को प्रभावित करती है। जब धर्म को राजनीतिक या व्यक्तिगत स्वार्थ के लिए उपयोग किया जाता है, तब समाज में विभाजन की स्थिति उत्पन्न होती है।

क्षेत्रीयता और भाषाई विवाद

भारत में विभिन्न राज्यों की अपनी भाषाएँ एवं सांस्कृतिक पहचान हैं। कभी-कभी यह विविधता क्षेत्रीय संघर्षों का कारण बन जाती है।

राजनीतिक स्वार्थ

राजनीतिक स्वार्थ भी सामाजिक समरसता के लिए चुनौती बन जाते हैं। कई बार राजनीतिक लाभ के लिए समाज को जाति, धर्म या क्षेत्र के आधार पर विभाजित किया जाता है।

सोशल मीडिया और गलत सूचना

आधुनिक समय में सोशल मीडिया के माध्यम से गलत सूचनाएँ तेजी से फैलती हैं, जिसके कारण समाज में तनाव एवं अविश्वास बढ़ सकता है।

सामाजिक समरसता की स्थापना के लिए समाधान

शिक्षा का प्रसार

शिक्षा सामाजिक समरसता स्थापित करने का सबसे सशक्त माध्यम है। शिक्षा के माध्यम से लोगों में सहिष्णुता, समानता एवं मानवता की भावना विकसित की जा सकती है।

सांस्कृतिक मूल्यों का संरक्षण

भारतीय संस्कृति के मूल्यों— जैसे वसुधैव कुटुम्बकम्, अहिंसा, सहिष्णुता और करुणा— को समाज में पुनः स्थापित करना आवश्यक है।

संवाद एवं सहभागिता

समाज के विभिन्न वर्गों के बीच संवाद एवं सहभागिता बढ़ाने से आपसी विश्वास तथा समझ विकसित होती है।

सामाजिक न्याय

सामाजिक समरसता के लिए यह आवश्यक है कि समाज के सभी वर्गों को समान अवसर और न्याय प्राप्त हो।

नीति एवं प्रशासनिक सुधार

सरकार को ऐसी नीतियाँ बनानी चाहिए जो सामाजिक समानता एवं समरसता को बढ़ावा दें।

युवाओं की भूमिका

युवा पीढ़ी समाज में परिवर्तन लाने की सबसे बड़ी शक्ति है। यदि युवाओं में समरसता और राष्ट्रीय एकता की भावना विकसित की जाए, तो समाज में सकारात्मक परिवर्तन संभव है।

भारतीय परम्परा में समरसता के आदर्श उदाहरण

भारतीय इतिहास में अनेक ऐसे उदाहरण मिलते हैं जहाँ सामाजिक समरसता का उत्कृष्ट रूप दिखाई देता है।

- सम्राट अशोक की धम्म नीति
- महात्मा गांधी का सर्वधर्म समभाव

इन सभी उदाहरणों ने यह सिद्ध किया कि सामाजिक समरसता के माध्यम से ही समाज में स्थायी शांति और विकास संभव है।

निष्कर्ष

सामाजिक समरसता किसी भी राष्ट्र की प्रगति और स्थिरता के लिए आवश्यक एवं अनिवार्य तत्व है। भारत जैसे बहुसांस्कृतिक समाज में इसका महत्व और भी अधिक बढ़ जाता है। भारतीय सांस्कृतिक विरासत हमें समन्वय, सहिष्णुता एवं मानवता की शिक्षा देती है। वर्तमान समय में सामाजिक समरसता के सामने अनेक चुनौतियाँ हैं, लेकिन यदि हम अपनी सांस्कृतिक परम्पराओं एवं मूल्यों को अपनाएँ तथा संवाद, शिक्षा एवं सामाजिक न्याय को बढ़ावा दें, तो इन चुनौतियों का समाधान संभव है।

अंततः यह कहा जा सकता है कि सामाजिक समरसता केवल सरकारी नीतियों से नहीं, प्रत्युत् समाज के प्रत्येक व्यक्ति के प्रयास से स्थापित होती है। जब प्रत्येक व्यक्ति दूसरों के प्रति सम्मान, सहयोग और प्रेम की भावना रखेगा, तभी एक समरस और सशक्त समाज का निर्माण संभव होगा।

सन्दर्भ

1. महोपनिषद् अध्याय ६ मंत्र ७१
2. बृहदारण्यक उपनिषद्, शान्ति पाठ
3. ऋग्वेद १०.१९१.२
4. महोपनिषद् अध्याय ६ मंत्र ७१
5. बृहदारण्यक उपनिषद्, शान्ति पाठ
6. ऋग्वेद १.१६४.४६
7. कबीरदास
8. गुरु नानक देव
9. दादू दयाल

अंतर्दृष्टि

■■■

भारतीय ज्ञान परंपरा में पारिवारिक मूल्य: प्राचीन संदर्भ एवं वर्तमान

प्रो. अंजू सेठ
पूर्व प्राचार्या
सत्यवती महाविद्यालय
दिल्ली विश्वविद्यालय

भारतीय ज्ञान परंपरा विश्व की प्राचीनतम और समृद्ध परंपराओं में से एक है, जिसकी जड़ें वेद, उपनिषद, पुराण, महाभारत और रामायण जैसे महान ग्रंथों में निहित हैं। इस परंपरा का मूल उद्देश्य केवल ज्ञानार्जन नहीं, बल्कि व्यक्ति के समग्र विकास-शारीरिक, मानसिक, नैतिक और आध्यात्मिक उन्नति-को सुनिश्चित करना है। भारतीय संस्कृति में परिवार को समाज की आधारशिला माना गया है, जहाँ से व्यक्ति अपने जीवन के मूल संस्कार प्राप्त करता है।

आज के आधुनिक युग में जहाँ व्यक्तिवाद और भौतिकता का प्रभाव बढ़ रहा है, वहीं पारिवारिक मूल्यों का महत्व और भी अधिक बढ़ जाता है। प्राचीन भारतीय ग्रंथों में वर्णित पारिवारिक आदर्श आज भी उतने ही प्रासंगिक हैं जितने पहले थे।

भारतीय संस्कृति का आधार **"वसुधैव कुटुम्बकम्"** की भावना है, जो सम्पूर्ण विश्व को एक परिवार के रूप में देखती है। यह संस्कृति सह-अस्तित्व, सहिष्णुता, प्रेम और त्याग जैसे उच्च आदर्शों पर आधारित है। भारतीय चिंतन में मानव जीवन को केवल भौतिक उपलब्धियों तक सीमित नहीं रखा गया, बल्कि उसे आध्यात्मिक उन्नति से जोड़ा गया है।

वसुधैव कुटुम्बकम् (महाउपनिषद्),
सर्वे भवन्तु सुखिनः, सर्वे सन्तु निरामयाः – (उपनिषद्)
अयं निजः परो वेति गणना लघुचेतसाम् – (हितोपदेश)

भारतीय समाज में परिवार को व्यक्ति के जीवन का प्रथम विद्यालय माना गया है। यहीं से वह बोलना, चलना, व्यवहार करना और जीवन जीने के मूल्य सीखता है। माता-पिता, गुरु और बुजुर्ग व्यक्ति के चरित्र निर्माण में महत्वपूर्ण भूमिका निभाते हैं।

मातृदेवो भव, पितृदेवो भव – (तैत्तिरीयोपनिषद्)
आचार्यदेवो भव – (तैत्तिरीयोपनिषद्)

 ISSN: 2583-391X

यत्र नार्यस्तु पूज्यन्ते रमन्ते तत्र देवताः – (मनुस्मृति)

भारतीय संस्कृति में पारिवारिक मूल्य सामाजिक जीवन की नींव हैं। ये मूल्य व्यक्ति को अनुशासन, कर्तव्यनिष्ठा और नैतिकता का पाठ पढ़ाते हैं। परिवार के माध्यम से ही व्यक्ति में सेवा, त्याग और समर्पण की भावना विकसित होती है।

सत्यं वद, धर्मं चर – (तैत्तिरीयोपनिषद्)
धर्मो रक्षति रक्षितः – (मनुस्मृति)
श्रद्धावान् लभते ज्ञानम् – (भगवद्गीता 4.39)

जीवन मूल्य वे सिद्धांत हैं जो मनुष्य के आचरण और विचारों को दिशा देते हैं। सत्य, अहिंसा, करुणा, प्रेम और ईमानदारी जैसे मूल्य व्यक्ति को एक आदर्श नागरिक बनाते हैं।

अहिंसा परमो धर्मः (महाभारत)
सत्यं वद, प्रियं वद - (मनुस्मृति)
न हि ज्ञानेन सदृशं पवित्रमिह विद्यते - (भगवद्गीता 4.38)

संयुक्त परिवार भारतीय संस्कृति की विशिष्ट पहचान रहा है, जहाँ कई पीढ़ियाँ एक साथ रहकर सहयोग, प्रेम और सुरक्षा का वातावरण बनाती हैं। यह व्यवस्था व्यक्ति को सामूहिकता और सहिष्णुता का पाठ सिखाती है।

संगच्छध्वं संवदध्वं – (ऋग्वेद 10.191.2)
समानी व आकूतिः - (ऋग्वेद 10.191.4)

पारिवारिक मूल्य व्यक्ति को जीवन में संतुलन और दिशा प्रदान करते हैं। ये मूल्य कठिन परिस्थितियों में भी सही निर्णय लेने की क्षमता विकसित करते हैं और व्यक्ति को सामाजिक जिम्मेदारी निभाने के लिए प्रेरित करते हैं।

नियतं कुरु कर्म त्वम् - (भगवद्गीता 3.8)
उद्धरेदात्मनात्मानम् - (भगवद्गीता 6.5)

परिवार में सभी सदस्यों के प्रति सम्मान का भाव समरसता और प्रेम को बढ़ाता है।

विद्या विनयसम्पन्ने... पण्डिताः समदर्शिनः - (भगवद्गीता 5.18)

अतिथि देवो भव - (उपनिषद्)

नारी को भारतीय संस्कृति में शक्ति और सृजन का स्रोत माना गया है।

यत्र नार्यस्तु पूज्यन्ते रमन्ते तत्र देवताः – (मनुस्मृति)

सद्भाव और सहिष्णुता परिवार को एकजुट बनाए रखते हैं।

एकं सत् विप्रा बहुधा वदन्ति – (ऋग्वेद)

क्षमा वीरस्य भूषणम् - (नीतिशतक)

परिवार बच्चों में समानता, अनुशासन और नैतिकता का विकास करता है।

विद्या ददाति विनयं – (हितोपदेश)

सा विद्या या विमुक्तये – (विष्णु पुराण)

सत्य और ईमानदारी व्यक्ति के चरित्र को मजबूत बनाते हैं, जबकि कर्मठता सफलता का आधार है।

सत्यमेव जयते - (मुण्डक उपनिषद्)

कर्मण्येवाधिकारस्ते - (भगवद्गीता 2.47)

योगः कर्मसु कौशलम् - (भगवद्गीता 2.50)

सकारात्मक सोच और त्याग की भावना परिवार में शांति और संतुलन बनाए रखती है।

मन एव मनुष्याणां कारणं बन्धमोक्षयोः - (उपनिषद्)

त्यागेनैके अमृतत्वमानशुः – (उपनिषद्)

परिवार ही बच्चों में राष्ट्रप्रेम की भावना का विकास करता है।

जननी जन्मभूमिश्च स्वर्गादपि गरीयसी - (रामायण)

बाल्यावस्था में परिवार संस्कारों का बीज बोता है, किशोरावस्था में मार्गदर्शन प्रदान करता है और युवावस्था में जिम्मेदारी का बोध कराता है। इस प्रकार जीवन के प्रत्येक चरण में पारिवारिक मूल्यों का अत्यंत महत्व है।

उत्तिष्ठत जाग्रत प्राप्य वरान्निबोधत - (कठोपनिषद्)

आचार्यात् पादमादत्ते - (नीतिशतक)

आज के वैश्वीकरण और तकनीकी युग में जहाँ परिवार छोटे होते जा रहे हैं और सामाजिक संबंध कमजोर हो रहे हैं, वहाँ भारतीय पारिवारिक मूल्यों की प्रासंगिकता और बढ़ जाती है। ये मूल्य व्यक्ति को मानसिक संतुलन, नैतिक दिशा और सामाजिक जुड़ाव प्रदान करते हैं। आधुनिक शिक्षा और जीवनशैली के साथ इन मूल्यों का समन्वय करना आवश्यक है, ताकि नई पीढ़ी न केवल तकनीकी रूप से सक्षम हो, बल्कि नैतिक और सांस्कृतिक रूप से भी समृद्ध बने।

भारतीय ज्ञान परंपरा में पारिवारिक मूल्य केवल सामाजिक व्यवस्था का आधार नहीं, बल्कि मानव जीवन के समग्र विकास की मूल धुरी हैं। प्राचीन ग्रंथों में वर्णित सत्य, अहिंसा, सम्मान, त्याग, सहिष्णुता और कर्तव्य जैसे मूल्य व्यक्ति को न केवल एक अच्छा परिवार सदस्य बनाते हैं, बल्कि एक आदर्श नागरिक के रूप में भी स्थापित करते हैं। परिवार वह प्रथम संस्था है जहाँ से व्यक्ति जीवन के इन मूल सिद्धांतों को सीखता और आत्मसात करता है।

वर्तमान समय में, जब भौतिकवाद, व्यस्त जीवनशैली और तकनीकी प्रभाव के कारण पारिवारिक संबंधों में दूरी बढ़ती जा रही है, तब इन मूल्यों की प्रासंगिकता और भी अधिक बढ़ जाती है। भारतीय पारिवारिक मूल्य हमें यह सिखाते हैं कि जीवन का वास्तविक सुख केवल व्यक्तिगत उपलब्धियों में नहीं, बल्कि सामूहिक समरसता, प्रेम और आपसी सहयोग में निहित है। अतः आवश्यक है कि हम आधुनिकता के साथ-साथ अपनी सांस्कृतिक जड़ों और पारिवारिक मूल्यों को भी संजोकर रखें, ताकि आने वाली पीढ़ियाँ न केवल ज्ञान और कौशल में समृद्ध हों, बल्कि नैतिकता और मानवीय संवेदनाओं से भी परिपूर्ण बनें। यही भारतीय ज्ञान परंपरा का वास्तविक संदेश और स्थायी महत्व है।

■■■

देश की आत्मनिर्भरता का नया सोपान : भाषायी कौशल

शिवानी चौहान
शोधार्थी
डॉ. भीमराव आंबेडकर विश्वविद्यालय, आगरा

भाषा मानव जाति को प्रकृति से प्राप्त वह वरदान है जिसके बिना सभ्यता का विकास असंभव है। भाषा मानव के विचारों से विचारों का, भावों से भावों का तथा संस्कारों से संस्कारों का परस्पर समन्वय स्थापित करती है। भाषा के बिना मानव एक मूक पशु के अतिरिक्त कुछ नहीं है। अतः मानव जाति के लिए भाषा के संस्कार तथा व्यवहार का ज्ञान अर्जित करना अनिवार्य है। भाषा समाज के मध्य जन्म लेती है तथा समाज ही उसका व्यवहार क्षेत्र है। विभिन्न समाजों के लोग दृश्य जगत को भिन्न-भिन्न ढंग से देखते तथा इसमें व्यवहार करते हैं। इस दृश्य जगत के विषय में उनकी धारणाएँ भी भिन्न होती हैं। विचारधाराओं की यही भिन्नता विभिन्न भाषाओं की संरचनागत व्यवस्था में परिलक्षित होती है। यही अवसंरचना आत्मनिर्भरता का प्रथम सोपान कही जा सकती है।
आत्मनिर्भरता का अर्थ है स्वयं पर निर्भर होना, अपने संसाधनों और क्षमताओं के आधार पर विकास करना। बालकृष्ण भट्ट ने स्पष्ट किया है, "आत्मनिर्भरता (अपने भरोसे पर रहना) ऐसा श्रेष्ठ गुण है कि जिसके न होने से पुरुष में पौरुषेयत्व का अभाव कहना अनुचित नहीं मालूम होता। जिनको अपने भरोसे का बल है, वे जहाँ होंगे, जल में तूंबी के समान सब के ऊपर रहेंगे। ऐसों ही के चरित्र पर लक्ष्य कर महाकवि भारवि ने कहा है कि तेज और प्रताप से संसार भर को अपने नीचे करते हुए ऊँची उमंग वाले दूसरों के द्वारा अपना वैभव नहीं बढ़ाना चाहते। शारीरिक बल, चतुरंगिनी सेना का बल, प्रभुता का बल, ऊँचे कुल में पैदा होने का बल, मित्रता का बल, मंत्र-तंत्र का बल इत्यादि जितने बल हैं, निज बाहु-बल के आगे सब क्षीण बल हैं। आत्मनिर्भरता की बुनियाद यह बाहु-बल सब तरह के बलों को सहारा देने वाला और उभारने वाला है।"[1] भारत सरकार द्वारा आरंभ किया गया "आत्मनिर्भर भारत अभियान" इसी दिशा में एक महत्वपूर्ण कदम है। "12 मई 2020 को माननीय प्रधानमंत्री ने राष्ट्र को संबोधित करते हुए आत्मनिर्भर भारत अभियान की शुरुआत की और भारत में कोविड-19 महामारी से लड़ने के लिए 20 लाख करोड़ रुपये के विशेष आर्थिक और व्यापक पैकेज की घोषणा की, जो भारत के सकल घरेलू उत्पाद (जीडीपी) का 10% है। इसका उद्देश्य देश और उसके नागरिकों को हर मायने में स्वतंत्र और आत्मनिर्भर बनाना है। उन्होंने आत्मनिर्भर भारत के पांच स्तंभों - अर्थव्यवस्था, अवसंरचना, व्यवस्था, जीवंत जनसांख्यिकी और मांग - की रूपरेखा भी प्रस्तुत की। वित्त मंत्री ने आत्मनिर्भर भारत अभियान के अंतर्गत सात क्षेत्रों में सरकारी सुधारों और सहायक उपायों की घोषणा की।"[2] सरकार ने आत्मनिर्भर लक्ष्यों की प्राप्ति के लिए कृषि आपूर्ति श्रृंखला सुधार, तर्कसंगत कर प्रणाली, सरल और स्पष्ट कानून, सक्षम मानव संसाधन और मजबूत वित्तीय प्रणाली जैसे सुधार किए। जब बात आत्मनिर्भरता की है तो अर्थव्यवस्था, अवसंरचना, मानव संसाधन आदि सभी से पूर्व भाषा के सोपान को समझा जाना चाहिए।

आतनिर्भरता हेतु भाषा भाषा की भूमिका अहम है क्योंकि यह ज्ञान, विचार और अभिव्यक्ति का प्रमुख माध्यम है। यदि व्यक्ति अपनी भाषा में शिक्षा प्राप्त करता है तो वह अधिक प्रभावी ढंग से सीखता और सृजन करता है अतः भाषायी कौशल के मूल सिद्धांतों को समझना तथा इसके माध्यम से किस प्रकार राष्ट्र के समग्र विकास को गति मिल सकती है, यह निर्धारण करना अति आवश्यक है।

भाषायी कौशल की अवधारणा

भाषायी कौशल विकास की अवधारणा मानव जीवन के समग्र विकास से गहराई से जुड़ी हुई है। भाषा केवल संप्रेषण का माध्यम न होकर व्यक्ति के विचार, भावनाओं और ज्ञान को अभिव्यक्त करने का सशक्त माध्यम है। इसलिए भाषायी कौशल का विकास व्यक्ति के बौद्धिक, सामाजिक और व्यावसायिक जीवन को सुदृढ़ बनाता है।

भाषायी कौशल मुख्यतः चार प्रकार के होते हैं-सुनना, बोलना, पढ़ना और लिखना। इन चारों कौशलों का संतुलित विकास ही प्रभावी संचार की नींव रखता है। सुनने का कौशल व्यक्ति को दूसरों के विचारों को समझने में सक्षम बनाता है, बोलने का कौशल अपने विचारों को स्पष्ट और प्रभावशाली ढंग से प्रस्तुत करने में सहायक होता है। पढ़ने का कौशल ज्ञानार्जन का प्रमुख माध्यम है और लिखने का कौशल व्यक्ति की रचनात्मकता एवं अभिव्यक्ति क्षमता को विकसित करता है।

"भाषायी कौशल विकास भाषा सीखने की एक निरंतर और गतिशील प्रक्रिया है जो व्याकरण या शब्दावली तक सीमित नहीं है वरन् इसमें सामाजिक संदर्भ, सांस्कृतिक समझ और व्यवहारिक प्रयोग भी शामिल होते हैं। आधुनिक शिक्षण पद्धतियों में संप्रेषणात्मक दृष्टिकोण को विशेष महत्व दिया जाता है जिसमें भाषा को वास्तविक जीवन की परिस्थितियों में प्रयोग करने पर बल दिया जाता है"[3]

आज के वैश्वीकरण और डिजिटल युग में भाषायी कौशल का महत्व और भी बढ़ गया है। बहुभाषिकता व्यक्ति को विभिन्न संस्कृतियों से जोड़ने का कार्य तो करती ही है साथ ही, रोजगार के अवसरों को भी बढ़ाती है। विशेष रूप से हिंदी जैसी समृद्ध भाषा के संदर्भ में भाषायी कौशल का विकास राष्ट्रीय एकता और सांस्कृतिक संरक्षण में भी महत्वपूर्ण भूमिका निभाता है।

रोजगार और भाषायी दक्षता

भाषायी कौशल और रोजगार के बीच गहरा और प्रत्यक्ष संबंध है, क्योंकि प्रभावी संचार किसी भी पेशेवर क्षेत्र की मूलभूत आवश्यकता है। आज के प्रतिस्पर्धी और वैश्विक परिवेश में केवल तकनीकी ज्ञान पर्याप्त नहीं होता, अपने विचारों को स्पष्ट, सटीक और प्रभावशाली ढंग से प्रस्तुत करने की क्षमता भी उतनी ही महत्वपूर्ण होती है। जिन व्यक्तियों में सुनने, बोलने, पढ़ने और लिखने के भाषायी कौशल विकसित होते हैं, वे साक्षात्कार, प्रस्तुति, टीम वर्क और ग्राहक संवाद जैसे क्षेत्रों में बेहतर प्रदर्शन करते हैं। विशेष रूप से बहुभाषिक दक्षता व्यक्ति को राष्ट्रीय और अंतरराष्ट्रीय स्तर पर अधिक अवसर प्रदान करती है। हिंदी, अंग्रेज़ी या अन्य क्षेत्रीय भाषाओं में दक्षता रोजगार के विभिन्न क्षेत्रों जैसे मीडिया, शिक्षा, प्रशासन, पर्यटन और कॉर्पोरेट जगत में सफलता की संभावनाओं को बढ़ाती है। इस प्रकार, भाषायी कौशल न केवल रोजगार प्राप्त करने में सहायक हैं, बल्कि करियर में उन्नति और व्यक्तित्व विकास का भी महत्वपूर्ण आधार बनते हैं।

डिजिटल युग और भाषायी सशक्तिकरण

"डिजिटल भारत के इस युग में भाषा का महत्व पहले की तुलना में और अधिक बढ़ गया है, क्योंकि इंटरनेट पर स्थानीय भाषाओं में सामग्री की मांग तेजी से बढ़ रही है। तकनीकी विकास ने इस दिशा में महत्वपूर्ण भूमिका निभाई है, विशेष रूप से आर्टिफिशियल इंटेलिजेंस, मशीन अनुवाद और वॉयस टेक्नोलॉजी जैसी उन्नत प्रणालियों के माध्यम से भाषायी सीमाएँ लगातार कम हो रही हैं।"[4] अब लोग अपनी मातृभाषा में जानकारी प्राप्त कर सकते हैं, जिससे ज्ञान तक पहुंच अधिक सरल, व्यापक और समावेशी बन गई है। ये तकनीकें संप्रेषण को सुगम बनाती हैं और शिक्षा, व्यवसाय और प्रशासन के क्षेत्रों में भी नई संभावनाओं के द्वार खोल रही हैं जिससे भाषायी विविधता को बढ़ावा मिल रहा है और डिजिटल समावेशन को सशक्त आधार प्राप्त हो रहा है।

भाषायी विविधता और सांस्कृतिक आत्मनिर्भरता

भारत की भाषायी विविधता उसकी सांस्कृतिक शक्ति का प्रमुख आधार है क्योंकि प्रत्येक भाषा अपने भीतर एक विशिष्ट संस्कृति, परंपरा और जीवन-दृष्टि को संजोए हुए होती है। भाषायी कौशल के माध्यम से ही इस समृद्ध सांस्कृतिक धरोहर का संरक्षण संभव होता है और उसे नई पीढ़ियों तक प्रभावी रूप से पहुँचाया भी जा सकता है। जब व्यक्ति अपनी भाषा और अन्य भाषाओं में दक्षता प्राप्त करता है, तो उसकी पहचान वैश्विक मंच पर और अधिक सशक्त होती है और विभिन्न भाषाओं के प्रति सम्मान और समझ सामाजिक समरसता को बढ़ावा देती है जिससे समाज में एकता और आपसी सहयोग की भावना विकसित होती है।

"भाषायी विकास के संदर्भ में कई महत्वपूर्ण चुनौतियाँ सामने आती हैं। सबसे बड़ी समस्या अंग्रेज़ी भाषा का बढ़ता वर्चस्व है, जिसके कारण भारतीय भाषाएँ कई बार हाशिए पर चली जाती हैं। इसके साथ ही भारतीय भाषाओं में तकनीकी एवं वैज्ञानिक सामग्री की कमी भी एक बड़ी बाधा है जिससे ज्ञान-विस्तार सीमित हो जाता है। भाषा के प्रति हीन भावना भी एक गंभीर सामाजिक समस्या है जो लोगों को अपनी मातृभाषा के प्रयोग से दूर करती है।"[5] इसके अतिरिक्त, गुणवत्तापूर्ण शिक्षण संसाधनों की कमी भाषा शिक्षण को प्रभावी बनाने में अवरोध उत्पन्न करती है। भाषा संबंधी नीतियों और उनके वास्तविक क्रियान्वयन के बीच का अंतर भी इस क्षेत्र में प्रगति को प्रभावित करता है। इन चुनौतियों का समाधान किए बिना भाषायी कौशल का समुचित विकास संभव नहीं है।

भाषायी चुनौतियों के समाधान के लिए बहुआयामी प्रयास आवश्यक हैं। सबसे पहले मातृभाषा आधारित शिक्षा को बढ़ावा देना चाहिए जिससे सीखने की प्रक्रिया अधिक सहज और प्रभावी बन सके। इसके साथ ही डिजिटल प्लेटफॉर्म पर भारतीय भाषाओं को प्रोत्साहन देना जरूरी है ताकि इंटरनेट पर स्थानीय भाषाओं में समृद्ध सामग्री उपलब्ध हो सके। अनुवाद तकनीकों के विकास से विभिन्न भाषाओं के बीच ज्ञान का आदान-प्रदान सरल हो जाएगा। भाषा के प्रति सकारात्मक दृष्टिकोण विकसित करना भी अत्यंत आवश्यक है जिससे लोग अपनी भाषाओं पर गर्व महसूस करें और उनका अधिक प्रयोग करें। इसके अतिरिक्त सरकारी और निजी दोनों क्षेत्रों में भारतीय भाषाओं के प्रयोग को बढ़ावा देना चाहिए ताकि भाषायी समावेशन को सुदृढ़ आधार मिल सके और भाषा विकास को वास्तविक गति प्राप्त हो।

इस शोध से यह स्पष्ट होता है कि भाषायी कौशल आत्मनिर्भरता का एक सशक्त और अनिवार्य स्तंभ है, जो न केवल व्यक्ति के बौद्धिक और सामाजिक विकास को प्रोत्साहित करता है बल्कि राष्ट्र के आर्थिक और सांस्कृतिक उत्थान में भी महत्वपूर्ण भूमिका भी निभाता है। किसी भी देश की वास्तविक प्रगति उसकी भाषायी सशक्तता पर निर्भर करती है, क्योंकि भाषा ही ज्ञान, नवाचार और संप्रेषण का आधार होती है। यदि भारत को वास्तव में आत्मनिर्भर बनाना है तो उसे अपनी मातृभाषाओं और भारतीय भाषाओं को सुदृढ़ करना होगा। मातृभाषा में शिक्षा का प्रसार, डिजिटल माध्यमों में भारतीय भाषाओं का व्यापक उपयोग और भाषा के प्रति गौरव की भावना का विकास आदि सभी मिलकर एक सशक्त, समावेशी और आत्मनिर्भर भारत के निर्माण में महत्वपूर्ण योगदान देंगे।

संदर्भ

1. आत्मनिर्भरता, निबंध, बलकृष्ण भट्ट, साहित्य सुधा, बारहवीं कक्षा हिन्दी पाठ्यपुस्तक, ओडिशा राज्य पाठ्य पुस्तक प्रणयन एवं प्रकाशन संस्था भवन, भुवनेश्वर, पृ. 68
2. 'आत्मनिर्भर भारत अभियान', आधिकारिक वेबसाइट
3. भाषा-शिक्षण भाग 1, इकाई 5, एनसीईआरटी,2008 (बी.एड द्वितीय वर्ष पाठ्यक्रम), पृ. 172
4. तरुणा यादव, डिजिटल सशक्तिकरण, शोध पत्र (IJFMR)
5. (भाषा की समझ तथा आरंभिक भाषा विकास, राज्य शिक्षा शोध एवं प्रशिक्षण परीषद्, बिहार, पृ. 42)

■■■

समसमायिक परिप्रेक्ष्य में परिवार की आवश्यकता, चुनौतियाँ एवं समाधान

डॉ. भारती अग्रवाल
सहायक प्रोफेसर
देशबंधु कॉलेज
दिल्ली विश्वविद्यालय

परिवार शब्द मूलतः दो शब्दों से मिल कर बना है 'परि' और 'वार', "परि का अर्थ है चारों ओर वार शब्द का अर्थ है घेरना या रक्षा करना।"[1] इस तरह परिवार का अर्थ हुआ "वह समूह जो किसी व्यक्ति को चारों ओर से घेरकर सुरक्षित रखता है या उसकी देखभाल करता है।"[2] परिवार का तत्सम शब्द कुटुम्ब है। कुटुम्ब का शाब्दिक अर्थ "ऐसे लोगों के समूह से है जो एक ही घर, आश्रय, कुल (वंश) या छत के नीचे एक साथ रहते हैं और एक-दूसरे के प्रति अपने उत्तरदायित्व को साझा करते हैं।"[3] परिवार को अंग्रेजी में FAMILY कहते हैं। "इसकी उत्पति लैटिन भाषा के शब्द FAMILIA (फैमिलिया) से हुई है। यह मूल रूप से फैमुलस शब्द से बना है, जिसका अर्थ घरेलू नौकर या गुलामों का समूह होता है।"[4]

किसी भी देश की भाषा में उसके संस्कार, संस्कृति और मनस झलकता है। यदि किसी सभ्यता को भली-भाँति जानना हो तो उसकी भाषा का विश्लेषण करना चाहिए। यह बात परिवार नामक संस्था को समझने में भी लागू होती है। भारतीय संस्कृति में अभिव्यक्त परिवार सुरक्षा, त्याग, करुणा, आत्मसमर्पण पर आधारित होता है। यहाँ परिवार के प्रत्येक सदस्य की दूसरे के प्रति जवाबदेही होती है, परन्तु विदेशी संस्कृति में परिवार का अर्थ ही नौकर या गुलाम होता है। वहाँ भारतीय परिवार जैसी अवधारणा नहीं मिलती। विदेशी संस्कृति का फैमिली जब परिष्कृत होकर वैदिक संस्कृत का कुटुम्ब बनता है तो वह व्यापक रूप धारण कर लेता है। वैदिक संस्कृति एक वैभवशाली दृष्टिकोण रखती है इसीलिए कुटुम्ब का अर्थ सम्सत पृथ्वी से लिया जाता है। महा उपनिषद में कहा गया है – "अयं निजः परोवेति गणना लघुचेतसाम्। / उदारचरितानां तु वसुधैव कुटुम्बकम्।"[5] अर्थात उदार चरित वाले लोगों के लिए तो यह संपूर्ण धरती ही कुटुम्ब है। समय के साथ-साथ भाषा में अर्थ संकुचन भी होता रहता है जिसके प्रभाव के कारण कुटुम्ब का अर्थ केवल रक्त संबंध या एक वंश से लिय़ा जाने लगा। माने एक ही रक्त वाले लोगों का समूह जिसमें दादा, पड़दादा, उनके भाई, उनके बच्चे, ताऊ, चाचा आदि आते है इस तरह भारतीय परिवार एक विशाल कुटुम्ब से निर्मित होता है। मानव और पशु में सबसे बड़ा अंतर यही है कि पशु के ताऊ, चाचा, मौसा-मौसी, दादा-दादी नहीं होते यहाँ तक कि जब पशु बड़ा होता है तो उसे माता-पिता का भी भान नहीं होता। इसी प्रवृति का मिलता-जुलता रूप विदेशी संस्कृति की फैमिली में दिखाई देता है।

राष्ट्रीय संवयं सेवक संघ के प्रचारक रविन्द्र जोशी जी परिवार को समझाते हुए परिवार और कुटुम्ब में अंतर मानते हैं। इस अंतर को स्पष्ट करते हुए कहते हैं – "कुटुम्ब का संबंध हमारे रक्त संबंघ से जुड़े लोगों से हैं या इसे इस तरह भी कह सकते हैं कि एक ही वंश, परम्परा के लोग एक कुटुम्ब कहलाते हैं परन्तु परिवार कहने से वंश, परम्परा के लोग तो आते ही हैं साथ ही हमारे आस-पड़ोसी, हमारे पशु-पक्षी, घरेलु सहायक-सहायिका, कार्यक्षेत्र में काम करने वाले लोग, एक ही मोहल्ले में रहने वाले लोग भी परिवार के

भीतर समाहित हो जाते हैं।"[6] परिवार के भीतर समाहित सभी सदस्यों के प्रति आदर, प्रेम, सामंजस्य का व्यवहार करना प्रत्येक सदस्य का कर्तव्य होता है। भारतीय परिवार में दादा-दादी, चाचा-चाची, ताऊ-ताई, बुआ उनके बच्चे सभी आते है। भारतीय संस्कृति परिवार को इससे भी आगे ले जाती है और बताती है कि परिवार केवल एक छत के नीचे रहने वाले लोगों का समूह नहीं होता। "परिवार जब तक अधूरा है जब तक उनके मध्य परस्पर प्रीति, सामंजस्य, अनुकूलनशीलता, संस्कार, उत्तरदायित्व बोध न हो।"[7] यह सभी गुण हमें 'मैं' के साथ 'मैं' से विलग करते हैं। यह बात जितनी क्लिष्ट दिखती है इतनी है नहीं इसे समझने के लिए कीचड़ और कमल का उदहाहरण दिया जा सकता है। जिस तरह कमल कीचड़ में खिलते हुए भी कीचड़ से अलग होता है ठीक उसी तरह स्व के भाव में कीचड़ रूपी स्वार्थपरता नहीं आनी चाहिए। परिवार के सदस्य के होने के नाते उसकी प्रथमिकता परिवार होनी चाहिए। ऐसी परिवार नामक संस्था भारत ने विश्व को प्रदान की है। जहाँ परिवार का कोई भी सदस्य दूसरे सदस्य का काम करते समय अपना दायित्व और कर्तव्य समझ कर उसे करता है न कि विदेशी संस्कृति 'फैमुलस' वाले नौकर या गुलाम के भाव से भर कर काम करता है।

आज उत्तर आधुनिक युग है, जहाँ सभी पैसे और पावर के पीछे भाग रहें हैं और इस भाग-दौड़ में अपने मूल्य और संस्कार पीछे छोड़ते जा रहें हैं और निरन्तर अकेले होते जा रहे हैं। जब व्यक्ति के पास परिवार होता है तो सुख-दुख बाँटने के लिए व्यक्ति होते हैं परन्तु जैसे-जैसे परिवार का मूल रूप परिवर्तित हो रहा है व्यक्ति के पास उसका सुख-दुख बाँटने वाला कोई नहीं रह गया है। वह नितांत अकेला पड़ गया है। अपने इस अकेलेपन को बाँटने के लिए व्यक्ति सोशल मीडिया का साहरा ले रहा है। फेसबुक, ट्विटर, इंस्टाग्राम, रील्स, टिन्डर और भी न जाने क्या-क्या, इन सभी पर व्यक्ति अपने सुख-दुख की खबरे साझा कर रहा है। व्यक्ति के इस अकेलेपन को , सोशल मीडिया की लत को भुनाया जा रहा है जिससे लोग विशेषकर अपरिपक्व व्यक्ति धोखाधड़ी का शिकार हो रहें हैं। कुछ वर्ष पूर्व भारत में एक गेम आया था, जिसका नाम 'ब्लू वेल चैलेंज' था। "यह खेल विशेषकर युवाओं और किशोरों को लक्षित करके बनाया गया था। जिसे आत्महत्या का खेल भी बताया जा रहा था। इस खेल की विशेषता थी कि 50 दिन में 50 चैलेंज दिये जाते थे जिसे उपयोगकर्ता को पूरे करने होते थे बिना किसी को कुछ भी बताए। यह धमकी भी दी जाती थी यदि किसी को बताया तो उसके माता-पिता की हत्या कर दी जायेगी।"[8] एक तरह से डिजिटिल अरेस्ट था। तलवार दंपति केस या फिर कोरियन लड़कियों द्वारा आत्महत्या कर लेना, सोशल मीडिया के सही इस्तेमाल ना होने के कारण था। परिवार की टूटन ने बच्चों को बिखेर कर रख दिया। माता-पिता को पता ही नहीं चलता कि उनका बच्चा क्या कर रहा है, घंटों मोबाइल में क्या देख रहा है। छोटे से मोबाइल की विस्तृत दुनिया है जहाँ बच्चा उसका उपयोग करके विकास भी कर सकता है और उसके डार्क जाल में फंस कर अंधेरे में भी गुम हो सकता है।

19 वीं शताब्दी के उत्तरार्द्ध में भारत में एक बार पुनर्जागरण काल आया था जहाँ साहित्यकारों ने भारतीय संस्कृति के वैभव को जगाने का प्रयास किया था। जो भारतीय संस्कृति वैभव हीन मान रहे थे उन्हें भारत का गौरव शाली इतिहास स्मरण करवाया गया था। एक बार फिर उसी पुनर्जागरण की आवश्यकता है। अपनी संस्कृति और संस्कारों पर चिन्तन मनन करने की आवश्यकता है। यदि हम अपनी संस्कृति, परम्परा, अतीत पर विचार करेंगे तो पाएगें की भारत के पास एक विस्तृत गौरवशाली परम्परा है। आज का आधुनिक व्यक्ति जिन त्रासदियों से जुझ रहा है। जिस अवसाद, कुंठा, तनाव का शिकार हो रहा है, उन सभी समस्याओं का हल

हमारी संस्कृति में ही है। निरन्तर मूल्यहीनता और संस्कार विहिन समाज में परिवार ही एक ऐसी आशा है जो न केवल परिवार, समूह, समाज, राष्ट्र बल्कि विश्व का निर्माण करने की शक्ति रखती है। परिवार ही व्यक्ति की पहली पाठशाला होती है जहाँ वह न केवल कथ्य से बल्कि अनुकरण और भावनाओं के माध्यम से भी सीखता है। परिवार कभी भी उपदेश देने का काम नहीं करता। यदि बच्चे को सीध-सीधे उपदेश दिये जाये तो वह कभी नहीं समझता परन्तु यदि वह अपने से बड़ो को करते देखता है तो उसे लगता है यह जीवन का समान्य नियम है। ऐसा करना ही चाहिए। दूसरा सबसे महत्वपूर्ण कारक परिवार में होने वाली बातें, उसे सुनाई जाने वाली कहानियाँ उस पर गहरा असर डालती हैं। संयुक्त परिवार में बच्चे अपने दादा-दादी, ताऊ, नाना-नानी से कहानियाँ सुनते हुए बड़े होते हैं जिसका प्रभाव उन पर आजीवन बना रहता है। यह कहानियाँ ही बच्चों में विवेक जागृत करती हैं कि उन्हें क्या करना चाहिए या क्या नहीं करना चाहिए। हमारी संस्कृति में पंचतंत्र की कहानियाँ इसका जीवंत उदाहरण है। कहानियों के माध्यम से ही समझाया जाता है कि डाकू भी हो तो सुल्ताना डाकू जैसा, जो लोक कल्याण की भावना से पूरित हो, जिसमें करूणा, दया और ममता होनी चाहिए।

भारतीय संस्कृति के उपनिषद और गुरूकुल भी शिक्षा देने का काम करते हैं। तैत्तिरीय उपनिषद के शिक्षा वल्ली में विद्याध्ययन की समपूर्ति पर गुरूकुल से घर जाने वाले छात्रों को उपदेश देते समय कहा जाता था—"मातृ देवो भव, पितृदेवो भव, आचार्य देवो भव, अतिथि देवो भव।"[9] अर्थात माता, पिता, आचार्य और अतिथि को सदैव पूजनीय मानना चाहिए। जब छात्र अपनी शिक्षा समपूर्ति के रूप में यह मूल मंत्र ले कर जाता है तो यह मंत्र उसके मन की गहराइयों में उतर जाता है। ऐसी स्थिति में उसका चरित्र स्खलन नहीं हो पाता। यहाँ चरित्र से तात्पर्य उसके संस्कारों से है। यदि वह बुरी संगति में फंस जाता है तो भी उसके अवचेतन में बैठे संस्कार उसे महकाते रहते हैं। परिवार की आवश्यकता की बात केवल भारतीय संस्कृति ही नहीं करती अपितु विदेशी संस्कृति भी करती है और वह भारतीय परिवार की आवश्यकता महसूस करती है। जहाँ व्यक्ति बचपन से ही इंनवेस्ट करना सिखता है और वह परिवार में इतना इंनवेस्ट करता है कि जरूरत पड़ने पर उसे वह चक्रवृद्धि ब्याज के साथ वापिस मिलता है परन्तु पाश्चात्य संस्कृति परिवार में इंवेस्ट ही नहीं करती तो उसे वापिस क्या मिलेगा। जब पेड़ निस्वार्थ भाव से लगाया जाता है तभी आगे आने वाली पीढ़ी उसका सुख भोगती है यही नियम परिवार पर भी लागू होता है।

समाज, राष्ट्र और विश्व निर्माण के लिए परिवार इतना ही आवश्यक है। खजाने से भरी संदूकची है। भारतीय वैदिक संस्कृति का मूल है तो फिर ऐसा क्या हुआ कि भारतीय संस्कृति की यौगिग संस्था परमाणु संस्था में तब्दील हो गई।। भारतीय परम्परा का संयुक्त परिवार एकल हो गया और इस एकल परिवार का रूप भी सिमटने लगा। पहले परिवार में दादा-दादी, ताऊ-ताई, चाचा-चाची, बुआ उनके बच्चे मिलजुल कर रहते थे फिर दादा-दादी, माँ-पिता और उनके दो बच्चों तक परिवार सिमट कर रह गया और धीरे-धीरे दादा-दादी को वृद्धाश्रम में धकेल दिया गया और माँ-पिता और उनके दो बच्चों को घर कहा जाने लगा। यह सब बीसवीं शताब्दी के मध्य भूमंडलीकरण के साथ आरम्भ हुआ। एक ओर उद्योगिक युग को बढ़ावा मिल रहा था तो दूसरी ओर व्यक्तिवाद अपने पैर पसार रहा था। इन सभी घटनाओं के मध्य भारत, एशिया के एक बहुत बड़े बाजार के रूप में उभर कर सामने आ रहा था। इस बाजारवाद ने सभी संबंधो को उत्पादक और उत्पादन में बदल दिया। संबंधों में स्वार्थपरता आने लगी। 'माई लाईफ माई रूल' का मंत्र सबकी जबान पर आने लगा। 'मैं' इतना बड़ा हो गया कि परिवार इसमें खो गया। परिवार में मुखिया की स्थिति और पद दोनों समय

के साथ परिवर्तित हो गये। संयुक्त परिवार की मूल धूरी मुखिया होता था। घर का सबसे बड़ा बुज़ुर्ग घर का मुखिया कहलाता था। घर में चाहे कोई भी, कितना भी कमाये, घर का अंतिम निर्णय बुज़ुर्ग का होता था। परिवार के प्रत्येक सदस्य के प्रत्येक निर्णय में परिवार का प्रत्येक व्यक्ति शामिल होता था परन्तु अर्थ केन्द्रीयकरण ने इस धूरी को ही बदल कर रख दिया। अब घर का मुखिया बुज़ुर्ग व्यक्ति न हो कर सबसे अधिक कमाने वाला सदस्य हो गया। सबसे अधिक कमाने वाला यह व्यक्ति या तो प्रौढ़ अवस्था का होता है या फिर य़ुवा अवस्था, इसके पास बुज़ुर्ग व्यक्ति की भाँति न तो जीवन के अनुभव होते हैं, न ही सहनशीलता होती है। ऐसे में उसे लगने लगा कि वह अधिक कमाता है तो सारा परिवार उसके नियम और निर्णयों को मानने को बाध्य होना चाहिए, परन्तु फिर भी वह घर को एकजुट रखने में असफल रहा। घर में आने वाली समस्याओं को सुलझाने के लिए उसके पास न तो अनुभव था न ही सहनशीलता, ऐसे में उसे लगने लगा कि उसका पैसा और प्रतिभा दोनों का फायदा उठाया जा रहा है। परिवार भीड़ लगने लगा। अब मुखिया होते हुए भी उसे पर्सनल स्पेस चाहिए था। इसी बिन्दू पर आकर परिवार बिखरने लगा और संयुक्त परिवार टूट कर एकल परिवार में सिमट गया।

पाश्चात्य संस्कृति की नकल ने एकल परिवार को तोड़ने का काम भी शुरू कर दिया। यह सभ्यता परिवार नामक संस्था को नष्ट-भ्रष्ट करने पर तुली हुई है। लिव-इन-रिलेशनशीप इसी तरह का संस्कार है। जहाँ विवाह नामक संस्था को पूरी तरह नकार दिया गया। फिर एक बार यदि भाषा की बात करें तो हिन्दी में लिव-इन-रिलेशनशीप, डिन्क, सिच्युएशनशीप, तलाक के लिए हिन्दी में कोई शब्द ही नहीं हैं, क्योंकि हमारी संस्कृति में ऐसे कोई मूल्य है ही नहीं और दिल की गहराईयों से हमने इन्हें स्वीकार भी नहीं किया तभी अभी तक हिन्दी में इनका विकल्प मौजूद नहीं है। विदेशी संस्कारों में भारतीय परिवार जैसी कोई अवधारणा है ही नहीं इसलिए वहाँ उत्तरदायित्व और कर्तव्य नहीं हैं। भारतीय परिवार में बचपन से ही व्यक्ति को परिवार के अनुकुलन बनना सिखाया जाता है। जब लिव-इन-रिलेशनशीप जैसे संस्कार अस्तित्व में आयेगें तो परिवार की रही सही संकल्पना भी समाप्त हो जायेगी।

आज परिवार विशेषकर भारतीय पद्धति वाले परिवार के विषय में बात हो रही हैं तो यह बात स्पष्ट है कि आज पूरा विश्व परिवार की आवश्यकता महसूस कर रहा है। ऐसी स्थिति में परिवार को बचाने के मुख्य रूप से '6 भ' जरूर अपनाने चाहिए। "भाषा, भूषा, भजन, भोजन, भवन, भ्रमण"[10] को जीवन में लाने से परिवार नामक संस्था को वापिस जागृत किया जा सकता है। सबसे जरूरी परिवार के भीतर सदस्यों के मध्य रागात्मकता बड़े। इसके लिए हमें परिवार में अनुशासन लाना होगा। भागती-दौड़ती जिन्दगी में जहाँ माता-पिता दोनों काम पर जाते हैं और बच्चे पढ़ाई में व्यस्त रहते हैं। उन्हें हफ्ते में तीन दिन एक समय साथ भोजन करना चाहिए। साथ भोजन ही नहीं करना चाहिए बल्कि एक-दूसरे की पसन्द का भोजन भी खाना चाहिए। भोजन खाते समय मोबाइल और टीवी से दूरी बनानी चाहिए और दैनिकी एक दूसरे के साथ साझा करनी चाहिए। इससे एक-दूसरे के जीवन में क्या घटित हो रहा है, पता चलता है। जीवन में आने वाली समस्याएँ जो बहुत मुश्किल लगतीं हैं कई बार उनका हल बहुत आसानी से निकल जाता है। बच्चों को संस्कार देने के लिए अपने कुटुम्ब से जुड़ना आवश्यक है। कुटुम्ब से जुड़कर बच्चा अपने कुटुम्ब के बारे में जानता है और व्यापक रागात्मक संबंध बनाता है। यहीं वह अपनी मातृभाषा से प्रेम करना सीखता है और उसे व्यवहार में लाता है। एक महीने में, दो महीने में परिवार के मध्य भजन संगीत, कीर्तन आदि के कार्यक्रम भी रखने चाहिए। ऐसे कार्यक्रम में शामिल लोगों के भीतर साकारात्मकता तो बड़ती ही है, अभावों और संघर्षो जूझने की ताकत भी मिलती है। यदि ऐसा समझ लें कि कोई एक व्यापक, दिव्य शक्ति है जो

सब देखती है तो समाज में आधे से ज्यादा अपराध समाप्त हो सकतें हैं। परिवार के साथ, कुटुम्ब के साथ भ्रमण पर जायें। आज कल विदेशों में भ्रमण का फैशन है परन्तु यदि अपनी संस्कृति और सभ्यता की लौटेंगे तो पता चलेगा कि भारत में एक से एक सुन्दर जगह हैं। चमत्कारिक मंदिर है जिनके विषय की गुत्थी को विज्ञान भी सुलझाने में असफल रहा है। इसी तरह एक-एक कदम से कुटुम्ब और परिवार साथ होगा और हर उलझन सुलझ जायेगी।

संदर्भ

1. हिन्दी शब्द सागर नागरी प्रचारिणी सभा भाग 6 पृ. 2864

2. वही पृ. 2864

3. हिन्दवी शब्दकोश hindwi.org

4. Family-Etymology, origin and meaning etymoline.com

5. महाउपनिषद अध्याय 4 श्लोक 71

6. प्रेरणा विचार पत्रिका के द्वारा रविन्द्र जोशी जी का साक्षात्कार
https://www.facebook.com/share/v/19YnJTwihi/

7. पारिवारिक सामंजस्य jagran.com

8. ब्लू व्हेल (खेल) विकीपिडिया

9. तैत्तरिय उपनिषद, शिक्षावल्ली, 11 वां अनुवाक (2)

10. प्रेरणा विचार पत्रिका के द्वारा रविन्द्र जोशी जी का साक्षात्कार
https://www.facebook.com/share/v/19YnJTwihi/

पुस्तक समीक्षा

■■■

Nanaji Deshmukh: An Epitome of Indian Social Work

Edited by Bishnu Mohan Dash and Mithilesh Kumar

ISBN: 978-93-88937-89-4

Dr. Mithilesh Kumar Tiwari
Assistant Professor,
Mahatma Gandhi Antarrashtriya Hindi VishwaVidyalaya, Wardha

The book *Nanaji Deshmukh: An Epitome of Indian Social Work* is a significant contribution to the growing body of literature on indigenous models of social work in India. Edited by Bishnu Mohan Dash and Mithilesh Kumar, the volume brings together a collection of scholarly essays that examine the life, philosophy, and developmental interventions of Bharat Ratna Nanaji Deshmukh. More than a biographical account, the book presents Nanaji as a visionary social reformer whose work offers a viable framework for Indianizing social work education and practice.

The central theme of the volume is the relevance of Nanaji Deshmukh's philosophy of service, self-reliance, and integral human development in contemporary India. The editors successfully position Nanaji within the broader discourse of social transformation, rural reconstruction, and indigenous knowledge systems. The book argues that Indian social work has remained excessively dependent on Western theories and methodologies and therefore requires a stronger engagement with indigenous experiences and models. Nanaji's work in Gonda and Chitrakoot is presented as one such model that combines theory and practice in a uniquely Indian context.

One of the notable strengths of the volume is its interdisciplinary character. The contributors come from diverse academic backgrounds and examine Nanaji's contributions through multiple perspectives, including social work, rural development, social entrepreneurship, integral humanism, sustainability, and community participation. This diversity enriches the volume and allows readers to appreciate the multidimensional nature of Nanaji's work.

The opening sections emphasize the philosophical foundations of Nanaji's worldview. The chapter on "Integral Humanism as the Guiding Principle of Social Work" provides a detailed discussion of Pandit Deendayal Upadhyaya's philosophy and its application to social work. The authors argue that social work should not merely focus on individual problems but should

promote harmony among the individual, family, community, nation, and humanity. This holistic perspective challenges the individualistic orientation of Western social work and offers a culturally rooted alternative. The discussion is particularly relevant in contemporary times when social fragmentation and excessive individualism have become global concerns.

Another major contribution of the book is its detailed examination of Nanaji's rural development experiments. The chapter "Nanaji Deshmukh's Vision of Rural Development" highlights his transition from active politics to full-time social service. The authors demonstrate how Nanaji transformed villages through innovative programmes based on self-reliance, local participation, and sustainable development. His belief that genuine national development must emerge from village development is explored with clarity and conviction.

The discussion of the Chitrakoot Model of Development is especially illuminating. The model emphasizes education, health, skill development, water conservation, agricultural improvement, and community participation. Unlike many government-driven development programmes, Nanaji's approach sought to empower communities rather than create dependency. The emphasis on local resources and community initiative makes the model particularly relevant for contemporary debates on sustainable development and rural empowerment.

A unique feature highlighted in the volume is the concept of the *Samaj Shilpi Dampati* (Social Sculptor Couple). This innovative approach involved trained married couples living in villages and working closely with local communities to facilitate development initiatives. The model reflects Nanaji's understanding of social change as a participatory process rather than an externally imposed intervention. It also resonates strongly with contemporary social work principles such as community organization, participation, empowerment, and capacity building.

The volume further explores Nanaji's contributions as a social entrepreneur. Several chapters portray him as a leader who combined vision with practical action. His ability to establish institutions, mobilize resources, and inspire people demonstrates an approach to social work that transcends conventional welfare activities. The contributors argue that Nanaji institutionalized social service and transformed it into a professional and sustainable endeavor.

Another important aspect of the book is its emphasis on values. Service (*sewa*), selflessness, ethical commitment, and social responsibility emerge as recurring themes throughout the text. These values are presented not merely as moral ideals but as practical principles guiding effective social action. In an era marked by commercialization and professionalization, the book reminds readers of the ethical foundations of social work.

The volume also contributes to the ongoing discourse on the Indianization of social work education. Several authors argue that Indian social work curricula have historically relied heavily on Western theories while neglecting indigenous traditions of service and community development. By documenting Nanaji's work, the book seeks to create a knowledge base rooted in Indian realities. This is particularly valuable for students, researchers, and practitioners seeking culturally relevant frameworks for social intervention.

Despite its many strengths, the book has certain limitations. At times, the tone of some chapters becomes celebratory rather than analytical. While Nanaji's achievements undoubtedly deserve recognition, a more critical engagement with the challenges, limitations, and possible criticisms of his model would have strengthened the academic rigor of the volume. Comparative analyses with other rural development models or empirical assessments of long-term outcomes would also have added depth to the discussion.

The editorial quality of the volume could have been improved in certain sections. Some chapters exhibit repetition, and minor linguistic and typographical inconsistencies occasionally distract from the reading experience. However, these issues do not significantly diminish the scholarly value of the work.

Overall, *Nanaji Deshmukh: An Epitome of Indian Social Work* is a timely and important contribution to social work literature in India. It successfully documents the life and work of one of India's most influential social reformers while simultaneously advancing the debate on indigenous approaches to social work and development. The book is particularly relevant for scholars interested in rural development, social entrepreneurship, community organization, Gandhian thought, Integral Humanism, and Indian social work.

The volume demonstrates that Nanaji Deshmukh's legacy extends far beyond politics. His experiments in village development, community empowerment, and institution building offer valuable lessons for contemporary development practitioners and policymakers. As India seeks pathways toward sustainable and inclusive development, the ideas and practices documented in this book remain highly relevant. The editors deserve appreciation for bringing together a comprehensive and thought-provoking collection that contributes meaningfully to both academic scholarship and social practice.

विविधा

■■■

महात्मा गांधी और डॉ. भीमराव अंबेडकर का प्रथम मिलन, कारागार-संवाद एवं सामाजिक दृष्टि : भीमायनम् के सन्दर्भ में

Mintu Mondal
Research Scholar
Department of Sanskrit,
Dr. Harisingh Gour Vishwavidyalaya, Sagar

प्रस्तावना

भारतीय स्वतंत्रता आन्दोलन केवल राजनीतिक संघर्ष ही नहीं था, बल्कि वह सामाजिक परिवर्तन का भी व्यापक अभियान था। इस आन्दोलन में दो महान व्यक्तित्व महात्मा गांधी और डॉ. भीमराव अंबेडकर भारतीय समाज के पुनर्निर्माण के प्रमुख स्तम्भ के रूप में उभरे। दोनों का लक्ष्य राष्ट्र की उन्नति था, किन्तु सामाजिक समस्याओं, विशेषतः अस्पृश्यता और दलित उत्थान के प्रश्न पर उनके दृष्टिकोण में महत्वपूर्ण भिन्नता थी। 'भीमायनम्' महाकाव्य के आधार पर गांधी और भीमराव के मध्य वैचारिक संवाद, मतभेद, सामाजिक चिंतन तथा समाधान की खोज का अत्यन्त मार्मिक चित्रण मिलता है। प्रस्तुत लेख में दोनों महापुरुषों के प्रथम मिलन, उनके संवाद, वैचारिक मतभेद तथा सामाजिक दृष्टि का विस्तारपूर्वक विवेचन किया गया है।

ऐतिहासिक एवं राजनीतिक पृष्ठभूमि

'भीमायनम्' के वर्णनानुसार उस समय भारत का राजनीतिक वातावरण अत्यन्त जटिल था। असहयोग आन्दोलन, स्वराज्य की मांग, सामाजिक असमानता तथा दलितों के अधिकार जैसे अनेक प्रश्न सामने थे। महात्मा गांधी असहयोग के सिद्धान्त पर दृढ़ रहते हुए बार्डोली-सत्याग्रह में संलग्न थे। दूसरी ओर, भीमराव अंबेडकर दलितों के राजनीतिक अधिकारों तथा सामाजिक समानता के लिए सक्रिय संघर्ष कर रहे थे। गोलमेज सम्मेलन में अंबेडकर द्वारा दलितों के लिए पृथक् राजनीतिक अधिकारों की मांग ने राष्ट्रीय नेतृत्व में व्यापक चर्चा और विवाद उत्पन्न किया। स्वायत्तता और दलित अधिकारों के विषय में भीमराव की स्पष्ट और निर्भीक आलोचना के कारण वे राष्ट्रीय सभा के सदस्यों के क्रोध का विषय भी बने। यह स्थिति उस समय के राजनीतिक तनाव और वैचारिक संघर्ष को प्रकट करती है।

गांधी और भीमराव का प्रथम मिलन : वैचारिक संवाद का प्रारम्भ

समय के साथ राजनीतिक परिस्थितियों में परिवर्तन हुआ और गांधीजी ने भीमराव से मिलने की इच्छा व्यक्त की। यह मिलन भारतीय सामाजिक इतिहास की एक महत्वपूर्ण घटना थी।

"काले ततो गच्छति राजकीये क्षेत्रे तदाऽभूत् परिवर्तनं च।

भीमं तदा द्रष्टुमियेष गान्धी न्यमन्त्रयत् तं च निजाधिवासम्।।"[1]

जब भीमराव निर्धारित समय पर गांधीजी से मिलने पहुँचे, तब गांधीजी एक विदेशी युवती से वार्तालाप में व्यस्त थे। इस उपेक्षा से भीमराव का मन व्यथित हुआ, किन्तु उन्होंने संयम बनाए रखा। यह प्रसंग उनके धैर्य, आत्मसंयम और गंभीर व्यक्तित्व का परिचायक है।

"महात्मनाऽऽहूत इयाय भीमस्तं द्रष्टुमिच्छन् किल दिष्ट-काले।
गान्धी तु वैदेशिकया युवत्या संभाषमाणश्चिरकालमासीत्।।"[2]

गांधीजी ने औपचारिक स्वागत करते हुए उन्हें अपने विचार व्यक्त करने के लिए कहा, किन्तु भीमराव ने स्पष्ट शब्दों में कहा कि वे स्वयं कुछ कहने नहीं आए हैं, बल्कि यह जानना चाहते हैं कि उन्हें किस उद्देश्य से बुलाया गया है। यह संवाद भीमराव की स्पष्टवादिता और आत्मसम्मान को दर्शाता है।

"आगम्यतामत्र नमो भवद्भ्यस् तद्वाच्यतां यत् कथनीयमस्ति।
श्रुत्वाऽनपेक्ष्यं वचनं तदीयं प्रत्यब्रवीत् स्पष्टतयैव भीमः।।
भवद्भिराहूत इहागतोऽस्मि नैवास्ति किञ्चित्तु मया प्रवाच्यम्।
श्रोतुं तदिच्छामि भवद्भ्य एवं तत्कारणं येन निमन्त्रितोऽस्मि।।"[3]

दलित उत्थान के विषय में मतभेद

गांधीजी ने गोलमेज सम्मेलन में भीमराव के कार्यों की प्रशंसा करते हुए कहा कि दलितों के उत्थान के लिए उनके प्रयास सराहनीय हैं। उन्होंने यह भी बताया कि राष्ट्रीय सभा अस्पृश्यता उन्मूलन के लिए पहले से प्रयासरत है और इस उद्देश्य के लिए पर्याप्त धन भी व्यय किया गया है।

"आकर्ण्य तद् भीम-वचो महात्मा प्रत्यब्रवीच्छान्त-गभीर-वाचा।
शस्तं धुरीणैर्बहु-वृत्तपत्रैर् युष्मत्कृतं वर्तुल-पीठ-कार्यम्।।"[5]

किन्तु भीमराव ने इस दृष्टिकोण से असहमति व्यक्त करते हुए कहा कि इन प्रयासों से दलितों की वास्तविक स्थिति में कोई सुधार नहीं हुआ। उन्होंने स्पष्ट कहा कि यदि यह धन दलितों की शिक्षा पर व्यय किया जाता, तो वे ज्ञान, रोजगार और सामाजिक स्थिरता प्राप्त कर सकते थे।

"दीनान्त्यजोद्धार-कृते कृतास्ते भवत्प्रयत्नास्त्वभिनन्दनीयाः।
सर्वैश्च राष्ट्रीयसभा-सदस्यैर् अङ्गीकृतं कार्यमिदं पुरैव।।"[6]

यहाँ भीमराव का दृष्टिकोण मूलभूत सामाजिक परिवर्तन पर आधारित था, जबकि गांधीजी का दृष्टिकोण नैतिक सुधार और सामाजिक एकता पर केन्द्रित था।

सामाजिक समस्या की जड़ : बाह्य सुधार बनाम मूल परिवर्तन

भीमराव ने गांधीजी के प्रयासों को “बाह्योपचार” अर्थात् सतही उपाय बताया। उनके अनुसार समस्या की जड़ सामाजिक व्यवहार में निहित थी। जब तक सहभोजन और अंतरजातीय विवाह जैसी सामाजिक समानता स्थापित नहीं होगी, तब तक वास्तविक परिवर्तन संभव नहीं।

“बाह्योपचारः खलु वः प्रयत्नो नो मुलगामी न च हृद्गतः सः।
नैकोऽपि सिद्धः सहभोजनाय नैवापि वैवाहिक बन्धनाय।।”[7]

उन्होंने यह भी कहा कि उच्च वर्णों द्वारा दलितों को समाज से पृथक कर दिया गया है, अतः उन्हें राजनीतिक दृष्टि से अलग समुदाय के रूप में मान्यता दी जानी चाहिए। यह विचार उनके पृथक् निर्वाचन की मांग का आधार था।

राष्ट्र और समाज की एकता पर गांधीजी का दृष्टिकोण

गांधीजी ने समाज को राष्ट्ररूपी वृक्ष की उपमा देते हुए कहा कि सवर्ण और दलित उसकी विभिन्न शाखाएँ हैं। दलितों के बिना हिन्दू समाज अपूर्ण हो जाएगा। उन्होंने समाज के विभाजन का स्पष्ट विरोध किया और कहा कि दलित हिन्दू समाज के अभिन्न अंग हैं।

“सर्वे सवर्णा दलिताश्च विश्वे राष्ट्र-द्रुमस्यैव विभिन्न शाखाः।
हिन्दुः समाजो दलितैर्विना स्याद् वृक्षो विशालो विकलो विशाखः।।”[8]

गांधीजी की दृष्टि में सामाजिक सुधार का मार्ग समाज की एकता और नैतिक परिवर्तन से होकर जाता था। वे दलितों के पृथक् राजनीतिक अधिकारों को समाज की एकता के लिए हानिकारक मानते थे।

वैचारिक टकराव और संवाद का समापन

जब गांधीजी ने अपने विचार प्रकट किए, तब भीमराव ने स्पष्ट कहा कि वे सब समझ चुके हैं और वहाँ से प्रस्थान किया। उनके इस साहस और स्पष्टता से वहाँ उपस्थित लोग आश्चर्यचकित रह गए।

उक्त्वेति भीमोऽनुचरैः प्रयातस् तं वीक्ष्यमाणः स्तिमितश्च गान्धी।
धार्ष्ट्यं हि भीमस्य समीक्ष्य सर्वे तत्रत्य-लोकाश्चकिता बभूवुः।।[9]

यह प्रसंग दोनों महान व्यक्तित्वों के बीच गहरे वैचारिक मतभेद को दर्शाता है, किन्तु साथ ही यह भी स्पष्ट करता है कि दोनों ही अपने-अपने सिद्धान्तों के प्रति दृढ़ थे।

कारागार संवाद :

बाद में समझौते की संभावना के अंतर्गत भीमराव को पुणे के कारागार में गांधीजी से मिलने के लिए आमंत्रित किया गया- **"प्रस्ताविते तैस्तु सुवर्ण-मध्य आमन्त्रितोऽभूत् त्वरितं च भीमः।"**[10] वहाँ उन्होंने गांधीजी को उपवास के कारण अत्यन्त दुर्बल अवस्था में भूमि पर शयन करते देखा और अत्यन्त दुःखी हुए।

तं भारतस्यानभिषिक्त-राजं तस्यानुगैर्वन्दित-पाद-युग्मम्।

कारा-गृहे भू-शयने शयानं प्रायोपवेशेन भृशं कृशाङ्गम्॥[11]

गांधीजी ने अपनी प्रतिज्ञा दोहराते हुए कहा कि दलित हिन्दू समाज के अविभाज्य अंग हैं और वे समाज की एकता की रक्षा के लिए प्राण तक त्याग सकते हैं। उन्होंने पृथक् निर्वाचन का विरोध किया।

सर्वेऽन्त्यजाः सन्त्यविभाज्य-भागः पुराणकालात् खलु हिन्दु-जातेः।

भङ्क्तुं तदैक्यं न सहे कदापि प्राणार्पणेनाप्यवितुं यतिष्ये॥[12]

भीमराव ने शांत भाव से उत्तर देते हुए कहा कि इस जटिल समस्या का समाधान खोजने के लिए कोई उचित मार्ग अवश्य होना चाहिए और दोनों पक्षों को स्वीकार्य योजना पर विचार करना आवश्यक है।

"ज्ञातोऽस्ति मेऽसौ दृढ-निश्चयो वः सर्व-श्रुतं चास्ति दृढं मतं मे।

क्लिष्टां निराकर्तुमिमां समस्यां संमार्गणीयः खलु कोऽपि मार्गः॥"[13]

यह संवाद भारतीय लोकतांत्रिक परम्परा में संवाद और समाधान की भावना का उत्कृष्ट उदाहरण है।

गांधी और अंबेडकर की सामाजिक दृष्टि : तुलनात्मक विवेचन

- **सामाजिक समानता का लक्ष्य**

दोनों महापुरुषों का लक्ष्य सामाजिक समानता था, किन्तु उनके साधन भिन्न थे।

- **गांधीजी का दृष्टिकोण**

सामाजिक एकता और नैतिक सुधार पर बल, अस्पृश्यता का उन्मूलन सामाजिक चेतना से, समाज के विभाजन का विरोध।

- **अंबेडकर का दृष्टिकोण**

सामाजिक न्याय के लिए राजनीतिक अधिकार आवश्यक, शिक्षा और आर्थिक सशक्तिकरण पर बल, संरचनात्मक परिवर्तन की आवश्यकता।

- **संवाद की परम्परा**

दोनों के मतभेदों के बावजूद संवाद बना रहा, जो भारतीय लोकतंत्र की विशेषता है।

इस महाकाव्य में केवल ऐतिहासिक घटनाओं का वर्णन नहीं, बल्कि सामाजिक न्याय, मानव समानता और वैचारिक स्वतंत्रता के आदर्शों का भी प्रतिपादन किया गया है। इसमें भीमराव के साहस, स्पष्टवादिता तथा गांधीजी के त्याग, करुणा और नैतिक दृढ़ता का संतुलित चित्रण मिलता है।

उपसंहारः

भीमायनम् में वर्णित गांधी और भीमराव का संवाद भारतीय समाज के विकास का महत्वपूर्ण चरण है। यह केवल दो व्यक्तियों का वैचारिक संघर्ष नहीं, बल्कि सामाजिक न्याय और राष्ट्रीय एकता के बीच संतुलन की खोज का ऐतिहासिक प्रयास था। गांधीजी ने नैतिक एकता और सामाजिक समरसता का मार्ग प्रस्तुत किया, जबकि भीमराव अंबेडकर ने सामाजिक न्याय, शिक्षा और राजनीतिक अधिकारों की आवश्यकता पर बल दिया। दोनों के विचारों का समन्वय ही आधुनिक भारत के सामाजिक ढाँचे की आधारशिला बना। इस प्रकार 'भीमायनम्' भारतीय समाज के गहन चिंतन, संवाद और परिवर्तन की प्रेरणा प्रदान करते हैं तथा यह संदेश देते हैं कि समाज का वास्तविक उत्थान तभी संभव है जब न्याय, समानता और मानव गरिमा का सम्मान किया जाए।

संदर्भ

1. भीमायनम् - 13/37
2. भीमायनम् - 13/38
3. भीमायनम् - 13/40
4. भीमायनम् - 13/41
5. भीमायनम् - 13/42
6. भीमायनम् - 13/43
7. भीमायनम् - 13/47
8. भीमायनम् - 13/50
9. भीमायनम् - 13/53
10. भीमायनम् - 14/49
11. भीमायनम् - 14/50
12. भीमायनम् - 14/53
13. भीमायनम् - 14/55

विद्यां चाविद्यां च यस्तद्वेदोभयं सह।
अविद्यया मृत्युं तीर्त्वा विद्ययाऽमृतमश्नुते ।। 11 ।।
ईशावास्योपनिषद्

अर्थात जो विद्या और अविद्या – इन दोनों को ही एक साथ जानता है, वह अविद्या से मृत्यु को पार करके विद्या से अमरत्व प्राप्त कर लेता है।
इन्द्रप्रस्थ अध्ययन केंद्र समुद्रमंथन के सामान ज्ञान मंथन का वह सागर है जहाँ विष रूपी अज्ञान को दूर कर अमृत रूपी ज्ञान संचार होता है।
समाज के प्रत्येक वर्ग के बुद्धिजीवी जैसे शिक्षाविद, प्राध्यापक, शोधार्थी, प्रशासक, उद्यमी, व्यवसायी, पत्रकार, लेखक, चिन्तक, प्रबुद्ध जन इस ज्ञान मंथन रूपी महासागर में वासुकी रूपी बुद्धि द्वारा विभिन्न विषयों के मंथन से समाज को नवीन दिशा प्रदान करने का कार्य कर रहे हैं।
इन्द्रप्रस्थ अध्ययन केंद्र में जहाँ अध्ययन की सतत प्रक्रिया गतिमान रहती है, वहीं जीवंत सोच, सकारात्मक ऊर्जा और सक्रियता भी अखंड रूप से प्रवाहित रहती है। अध्ययन केंद्र शोध की वह प्रयोगशाला है जहाँ समाज में फैले वैचारिक संभ्रमों को तार्किकता और वैज्ञानिकता की कसौटी पर परख कर सत्यता का बोध व दर्शन किया जाता है। समाज से जुड़ा प्रत्येक वर्ग ज्ञान पिपासु भी स्व और स्वत्व के विषयों जैसे सामाजिक, धार्मिक, राजनैतिक व मानसिक द्वंद्वों को दूर कर नई चेतना का प्रवास अध्ययन केंद्र में पाता है।
इन्द्रप्रस्थ अध्ययन केंद्र न केवल समाज में फैले संभ्रम को शोध की प्रयोगशाला में दूर करने का प्रयास कर रहा है अपितु समाज के जागृति हेतु तात्कालिक विषयों पर राष्ट्रीय संगोष्ठी, व्याख्यान, प्रेरक संवाद और कार्यशाला भी आयोजित करता रहता है।
इन्द्रप्रस्थ अध्ययन केंद्र सदैव समाज में रहने वाले प्रबुद्ध एवं सक्रिय जनों की भागीदारी की अपेक्षा रखता है तथा भारत विश्वगुरु बने इस पावन विचार को लेकर चलायमान रहता है। सभी भारतवासियों से यही आग्रह है की इस पवित्र अश्वमेध रूपी अध्ययन केंद्र से जुड़कर भारत को विश्वगुरु बनाने में हेतु अपनी महत्वपूर्ण योगदान दें।

मूल्य : ₹ 100/-

इन्द्रप्रस्थ शोध संदर्श

कार्यालय :-
ए -1 / 7, श्रीराम कुटीर, द्वितीय तल, चाणक्य प्लेस,
पंखा रोड, नई दिल्ली -110059
ईमेल :- ipss..ipak@gmail.com
सचल दूरभाष :- 9811149925, 9868084938